वाला दूसरा उपाय नहीं हो सकता। लोग सदा उसके अनुगृहीत रहेंगे इससे उसके दोषों पर ध्यान न देंगे, ग्रैार न देना चाहेंगे ग्रैार उन्हें जानकर भी मैान का अवलम्बन करना नीतिसङ्गत मानेंगे। मेरे कथन का यह आशय नहीं है कि अच्छे अवैतनिक कार्यकर्ता मिलेंहीगे नहीं। मिलेंगे अवश्य, पर बहुत कम! अतएव उपयुक्त वेतन देकर ही कार्य कराना उचित है।

अब यदि अच्छे शिक्षकों का प्राप्त करना बहुधनसाध्य है तो इस बात का जान लेना भी उचित है कि कोई अध्यापक एक साथ २०, २५ लड़कों से अधिक को भली भांति शिक्षा न देसकेगा। एक श्रेणी के असंख्य लड़कों को बैठा कर शिक्षा देना कभी भी लाभदायक नहीं होता। अध्यापक नियत समय तक अपने विषय के सम्बन्ध में एक वक्तृता को देदेना ही अपने कर्तव्य का शेष समझता है। बालक समझते हैं या नहीं इस पर उसका ध्यान नहीं जा सकता, अथवा इसके विचार करने का उसे समय भी नहीं मिलता कि किस बालक को किस प्रकार बतलाने से ठीक होगा। इन बातों पर विचार कर यही मानना पड़ेगा कि एक श्रेणी में २०, २५ से अधिक बालक कभी नहीं रहने चाहिए। यह कार्य भी व्ययसाध्य है।

अच्छी शिक्षा देने के लिये ग्रैार किन किन बातों का होना आवश्यक है इस पर भी विचार कर लेना चाहिए। सबसे पहिले तो शिक्षागृह एकान्त पर साफ सुन्दर ग्रैार हवादार होना चाहिए। सुन्दरता मन को मुग्ध कर आत्मा को उन्नत करती है। एक झोपड़े में बैठाकर पढ़ाने से वह प्रभाव नहीं पड़ सकता जो एक दिव्य गृह में बैठाने से हो सकता है। यह पूछा जा सकता है कि प्राचीन काल में तो सुन्दर सुन्दर गृह नहीं बने हुए थे। उस काल में तो ऋषि लोग पर्णकुटीर में ही बैठ कर शिक्षा देते थे ग्रैार जैसे जैसे विद्वान् उस समय हुए वैसे अब देखने में नहीं आते। यह ठीक है, पर प्राकृतिक शोभा ग्रैार सुन्दरता से बढ़ कर ग्रैार कोई सुन्दरता नहीं है। एकान्त निर्जन स्थान में लता पत्रादि से आच्छादित कुटीरों में बैठ कर निर्झरों का आनन्द उठाना ग्रैार पठन पाठन करना वास्तव में नैसर्गिक सुख का अनुभव करना है। पर उस समय की अवस्था में अब बहुत कुछ परिवर्तन होगया है। अब उस ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कहां, वह गुरुसेवा, वह गुरुआज्ञा पालन कहां ग्रैार वह शान्ति ग्रैार सुखमय जीवन कहां? अस्तु स्कूल या कालेज का भवन लतापत्रादि से आच्छादित रहना चाहिए। गर्मी के दिनों में पंखों का सुप्रबन्ध होना चाहिए। टेबुल कुर्सी बेंच आदि ऐसे होने चाहिए कि किसी को कष्ट न हो। ऐसा न हो कि लम्बे लड़के को नीची बेंच ग्रैार टेबुल ग्रैार नाटे लड़के को ऊंचे बेंच ग्रैार टेबुल मिलें। युरोपीय देशों में आज कल ऐसे टेबुल बनने लगे हैं जो आवश्यकतानुसार ऊंचे वा नीचे किए जा सकते हैं। विद्याभवन के चारो ओर इतना स्थान छूटा रहना चाहिए कि व्यायाम-स्थान आदि का उत्तम प्रबन्ध रह सके। दुःख की बात है, इन सब बातों पर हमारे देश में साधारण ध्यान भी नहीं दिया जाता। पंखे कहीं कहीं तो इस बुद्धिमानी से लगाए जाते हैं कि दिवालों को हवा लगे तो लगे पर लड़कों को भूल कर भी न लगने पावे। फिर जिस गृह में पठन पाठन का काम होता है उसीमें पंखाकुली भी बैठा दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जब वह ऊंघने लगता है तो लड़कों का ध्यान पढ़ने पर से हट कर उसके ऊंघने की ओर लग जाता है ग्रैार वे अति उत्कण्ठा से इस बात की प्रतीक्षा करने लगते हैं कि कब वह ऊंघ कर गिरता है। ऐसी बुद्धिमानी से लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना रहती है। जिन महानुभावों के हाथ में स्कूलों ग्रैार कालिजों का प्रबन्ध हो, उन्हें इन बातों पर ध्यान रखना चाहिए ग्रैार विद्याभवन को जहां तक हो सके रम्य ग्रैार चित्ताकर्षक बनाना चाहिए। साथ ही व्यायाम आदि के लिये भी विस्तृत स्थान का होना प्रयोजनीय है।

इस बात के तो सब लोग जानते ग्रैार मानते हैं कि प्रत्येक विद्याभवन में एक स्थान पुस्तक ग्रादि के पढ़ने का ग्रैार एक पुस्तकालय का चाहिए। प्रायः यह देखने में भी ग्राता है। पुस्तकालय में पुस्तकों के ग्रतिरिक्त ग्रच्छे ग्रच्छे तथा प्रत्येक विषय के मासिक तथा ग्रन्य सामयिक पत्रों का रहना ग्रावश्यक है। हमारे देश में इसका पूर्ण ग्रभाव रहता है। यूरप ग्रैार ग्रमेरिका के एक एक स्कूलों में २००, २५० पत्र तक ग्राते हैं। इसके ग्रतिरिक्त प्रत्येक विद्यालय में वैज्ञानिक यन्त्रादि तथा उस विषय की शिक्षा के लिये एक परीक्षागृह का रहना ग्रत्यन्त ग्रावश्यक है। विज्ञान शिक्षा का फ़ल यही है कि जिसमें पढ़नेवालों की मस्तिष्क-शक्तिग्रों की उन्नति ग्रैार शिक्षा इस प्रकार से की जाय कि जिसमें समय पाकर वह पढ़नेवाला स्वयं नए ग्राविष्कार करने में समर्थ हो सकै। इसलिये लड़कपनही से उसे सब बातों का ग्रपनी ग्रांखों से देखना, ग्रपने कानों से सुनना ग्रैार ग्रपने हाथों से करना चाहिए। बिना इसके किए उसमें उस ग्राविष्कारिणी शक्ति का प्रदुर्भाव नहीं हो सकता। ऐसी सिक्षा के लिये एक ग्रध्यापक एक साथ २०।२५ लड़कों के नहीं पढ़ा सकता। कुछ लोगों का यह बिचार है कि कालिजों में इन सब गृहों ग्रैार यन्त्रों का होना ग्रावश्यक है, स्कूलों में नहीं। पर वे इस बात के नहीं जानते कि एक गृह के दृढ़ ग्रैार बहुकालस्थायी बनाने के लिये पहिले उसको नेव की ग्रोर ध्यान देना पड़ता है, यदि नेव ग्रच्छी न बनी तो गृह के शीघ्र ही गिर जाने की सम्भावना रहती है। इस सिद्धान्त के ग्रनुसार स्कूल में भी सब बातों का रहना ग्रत्यन्त ग्रावश्यक है। सारांश यह कि जिस विषय की शिक्षा देनी हो उसको पूर्ण सामग्री रहनी चाहिए। उद्भिजविद्या के लिये उद्यान, कृषीविद्या के लिये कृषीक्षेत्र, ज्योतिषविद्या के लिये मानमन्दिर, प्राचीन तत्व के लिये शिलालेख, ताम्रपत्रादि का होना ग्रत्यन्तही प्रयोजनीय है। परन्तु ये सब कार्य्य बिना बहुत सा धन व्यय किए नहीं हो सकते।

प्रत्येक स्कूल में इतिहास ग्रैार भूगोल की शिक्षा दी जाती है ग्रैार इसमें प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों ग्रैार व्यक्तियों का वर्णन ग्राता है, पर क्या एक भी स्कूल या कालिज ऐसा है जहां बालकों के इन स्थानों ग्रैार व्यक्तियों के चित्र दिखाए जा सकें। स्वदेशीय बड़े बड़े लोगों के चित्रों ग्रथवा प्रस्तरमूर्तियों के रखने से लड़कों में स्वदेशानुराग उत्पन्न होता है ग्रैार उनके चरित्र पर ग्रच्छा प्रभाव पड़ता है। विलायत के डबल्यू ग्रिग एण्ड सँस ने सेक्रेटरी ग्राफ़ स्टेट की ग्राज्ञासे ५०० ऐसे चित्र बनाए हैं जो भारतवर्ष के प्रसिद्ध प्रसिद्ध दुर्ग, प्रासाद, स्तूप, देवमन्दिर, शिलालेख स्तम्भ ग्रादि के फोटो से बने हैं ग्रैार जिन्हें मैजिक लालटैन द्वारा दिखा सकते हैं। ये सब ३०० रु० में मिल सकते हैं। इनको एकत्रित करके स्कूल ग्रैार कालिजों में रखना कोई बड़ी बात नहीं है, किन्तु लाभ ग्रनेक हैं।

स्कूलों के छोटे से छोटे दर्जो में ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं जिनमें रबर शीशा लकड़ी ग्रैार जन्तु ग्रादि का वर्णन रहता है। बंगाल में जो वर्नाक्यूलर शिक्षा की नई प्रणाली ग्रभी स्वीकृत हुई है उसके ग्रनुसार तो ग्रब इस प्रकार की पढ़ाई का बहुत ग्रधिक प्रचार हो जायगा। ऐसी ग्रवस्था में इन सब वस्तुग्रों के नमूनों का रहना ग्रत्यन्त ग्रावश्यक है। यह तो कभी ग्राशा नहीं की जा सकती कि प्रत्येक स्कूल ग्रैार कालिज के साथ लण्डन का वृटिश म्यूज़ियम या कलकत्ते का इण्डियन म्यूज़ियम बना दिया जायगा, पर सब में इन सब ग्रद्भुत वस्तुग्रों ग्रैार जीवों का ग्रथवा उनके प्रतिरूप का रहना ग्रत्यन्त ग्रावश्यक है।

उत्कृष्ट शिक्षालय के लिये दो बातें ग्रैार भी ग्रावश्यक हैं—एक क्रीड़ा तथा व्यायामस्थल ग्रैार दूसरा छात्राबास। मस्तिष्क रक्षा के साथही साथ शारीरक रक्षा उपयुक्त प्रकार से हो सकती है। एक के बिना दूसरे का होना ग्रसम्भव सा है। यदि कोई पुरुष ग्रत्यन्त तीव्र तथा चमत्कारिणी बुद्धि

का हो परन्तु उसका स्वास्थ्य अच्छा न हो तो उसकी वह बुद्धि किसी काम की नहीं हो सकती। इसलिये व्यायाम आदि का करना अत्यन्त प्रयोजनीय है। इसके अतिरिक्त इसमें और भी कई प्रकार की शिक्षा होती है। जो नायक (Captain) बनाया जाता है उसे सदा इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि मेरे अधीनस्थ सब लोग मेरा कहा मानें और मुझसे प्रसन्न रहें। साथ ही उसे इस उद्देश्य को सिद्धि के लिये बहुत कुछ स्वार्थ-त्याग करना पड़ेगा। अंगरेज़ी में एक प्रसिद्ध कहावत है कि वाटरलू का युद्ध ईटन के क्रीड़ा क्षेत्र में जीता गया था। इसका अर्थ यह है कि वेलिङ्गटन ने बाल्यावस्थाही में ईटन के क्रीड़ाक्षेत्र में इस बात की पूर्ण शिक्षा पाई थी कि नायक का काम कैसे करना चाहिए। यहां के लोगों को सुन आश्चर्य्य होगा कि विलायत और अमेरिका के एक एक स्कूल और कालिजों में शारीरक शिक्षा के लिये दो लाख तक प्रति वर्ष व्यय किया जाता है। छात्रावास से भी अनेक लाभ हैं। प्रथम तो परस्पर में स्नेह और भ्रातृभाव की वृद्धि होती है। दूसरे अनेक लोग एक प्रकार के सांचे में ढाले जा सकते हैं। उनके एक से भाव, एक से विचार, एक से चरित्र और एकही सी रहन सहन हो सकती है और साथही बड़ी सुगमता से उन्हें गार्हस्थ्य धर्म पालन की शिक्षा दी जासकती है। परन्तु इन सब बातों के लिये उपयुक्त पुरुषों और प्रबन्ध की आवश्यकता है। ऐसा कभो भूल के भी न करना चाहिए कि फीस इतनी अधिक रख दी जाय कि जिसमें अधिक लोग छात्रावास से लाभ उठाने में ही असमर्थ हों। लाहौर में दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज के क्षात्रावास का प्रबन्ध अच्छा जान पड़ता है। वहां ७ या ८ लड़कों का एक समुदाय बना दिया जाता है और उसमें प्रत्येक लड़के को एक सप्ताह तक अपने समुदाय के सब लड़कों का सब प्रकार का प्रबन्ध करना पड़ता है। उन्हें केवल एक नौकर और एक रसोइया दे दिया जाता है। इस प्रकार के प्रबन्ध में असीम लाभ हैं जिनका वर्णन करना वृथा है। बुद्धिमान लोग उन्हें स्वयं विचार और समझ सकते हैं, परन्तु इसके लिये एक उपयुक्त कर्मचारी का होना आवश्यक है जो इस बात को देखता रहे कि लड़के अपव्यय या अधिक व्यय तो नहीं करते और उनके प्रबन्ध में किसी प्रकार की त्रुटि तो नहीं रहती। यदि ऐसा होता हो तो उसे उचित है कि उपयुक्त सम्मति और शिक्षा द्वारा इसका संशोधन कर त्रुटि को दूर करे।

निदान सब बातों में हमलोगों ने देखा कि विना प्रचुर धन की सहायता के उपयुक्त शिक्षा का काम नहीं चल सकता और बिना उपयुक्त शिक्षा के हुए देश का उद्धार नहीं हो सकता। तो अब यह धन कहां से आवे? छात्रों के वेतन से यह कार्य कभी भी सुसम्पन्न न हो सकेगा। इसके लिये दानवीर लोगों की सहायता ही काम कर सकेगी। हमारे देश के धनाढ्य लोग, जो अपने धन का अपव्यय करते हैं, उसे ही यदि वे अच्छे अच्छे कामों में लगावें तो बहुत कुछ उपकार हो सकता है। अमेरिका के शिक्षाविषयक दान की बात सुनकर तो भारतवासियों को आश्चर्य होगा। गत जनवरी १९०० से उसी वर्ष के नवम्बर मास तक ११ महीनों में ५ करोड़ २० लाख रुपए का दान हुआ था। सायंस नाम का पत्र लिखता है कि एक सप्ताह में अमेरिका में प्रायः २८ लाख ३० हज़ार रुपए का दान हुआ था। दूर की बात जाने दीजिए, अभी उसी दिन मिस्टर कार्नेजी ने ३ करोड़ रुपए का दान इसलिये दिया है कि स्काटलैण्ड के चारो विश्वविद्यालयों में किसी स्काच छात्र को कुछ व्यय न देना पड़े, विना व्यय के वह पढ़ सके। वास्तव में यदि ऐसी जाति के लोग उन्नति न कर सकेंगे तो क्या हम लोग कर सकेंगे? आज तक भारतवर्ष में जिन जिन दानवीरो ने शिक्षा के लिये दान किया है उनका संक्षेपतः वर्णन कर हम अपने देशवासी धनाढ्य लोगों से सविनय यही प्रार्थना करेंगे कि वे इस ओर ध्यान दें और अपने धन को सुफल करें।

मन्द्राज में आजकल पचयप्पा नाम का एक



श्रीयुत पचयप्पा मुदालियर।

प्रसिद्ध कालिज वर्तमान है। जिन महाशय के नाम से यह कालिज चल रहा है उनका नाम पचयप्पा मुदालियर है। इनका जन्म १७५४ ई० में हुआ। जन्म होने के कुछ मास पहिले ही उनके पिता का परलोकवास हो गया था। उन दिनों में विलायती सौदागर तथा कम्पनी के नौकर व्यवसाय करके धनोपार्जन करते थे, पर देश भाषाओं के न जानने से उन्हें बड़ा कष्ट होता था और सदा द्विभाषियों की आवश्यकता रहती थी। मुदालियर महाशय ने कुछ शिक्षा पाकर यह काम प्रारम्भ किया और ईश्वरेच्छा से इसमें प्रचुर धन संगृहीत किया। मरते समय ये अपनी समस्त सम्पत्ति देवसेवा, दीन दुखियों की सहायता और संस्कृत शिक्षा के लिये दे गए। कई वर्ष तक इनकी इच्छा के अनुसार कार्य न होने से सब मिलाकर साढ़े सात लाख रुपया एकत्रित हो गया। अन्त में सन् १८४१ ई० में सुप्रीम कोर्ट की सम्मति से एक कालिज स्थापित हो गया जो अबतक मुदालियर महाशय की अक्षयकीर्ति की ध्वजा फहरा रहा है।



सर जमशेठजी जीजी भाई।

जमसेट जी जीजीभाई पारसियों में प्रसिद्ध

दानी होगए हैं। इनका जन्म सन् १७८३ ई में हुआ था। छोटी ही अवस्था में उनके पिता माता दोनो परलोक सिधारे, अतएव उन्हें पढ़ाने लिखाने आदि का भार उनके श्वसुर ने अपने ऊपर लिया। सन् १७९९ ई० में ये एक जहाज़ पर नौकर होकर चीन गए। उस समय उनकी पूंजी केवल १२०, रु० की थी। जब ये बम्बई लौट कर आए तो ३५०००, रु० लगाकर इन्होंने व्यापार करना प्रारम्भ किया। इनके दान की प्रशंसा है। इन्होंने २५ लाख रुपए के लगभग दान किया। इसी उपलक्ष में गवर्नमेन्ट ने उन्हें नाइट की उपाधि दी। इन्होंने कई स्कूल तथा अनाथालय आदि स्थापित किए जो अबलों वर्तमान हैं।

पण्डित गङ्गाधर शास्त्री पटवर्द्धन बरोदा के रहनेवाले थे। जिस समय मरहट्ठों ने उत्तरी भारतवर्ष को जय किया तो उन्होंने मथुरा को अपनी राजधानी माना। उसी समय पटवर्द्धन महाशय भी मथुरा में आकर बसे। यहां इन्होंने एक संस्कृत की पाठशाला और आगन्तुकों के लिये एक धर्मशाला खोली। इन दोनों कार्यों की सहायता के लिये महाराज सेन्धिया ने उन्हें ५ गांव दिए। जब बृटिश सिंह ने उत्तरी भारत मरहट्ठों से जीता और मथुरा भी उनके हाथ आया, उस समय ये गांव उनसे नहीं लिए गए, वरन् उनपर बहुत थोड़ा कर लगाया गया। पटवर्द्धन महाशय ने बिवाह नहीं किया था। इसलिये अपनी निजकी सन्तति न थी। पर कई भतीजे थे जिन्हें अनुपयुक्त पा उन्होंने मरने के पूर्व अपनी समस्त सम्पत्ति ईष्ट इण्डिया कम्पनी को सौंप दी कि जिसमें उसकी आय से धर्मशाला और संस्कृत पढ़ाने का काम निरन्तर चला जाय। उनकी मृत्यु सन् १८१८ में हुई। उस समय डाईरेक्टर्स ने यह निश्चिय किया कि दो गांव की आय तो धर्मशाला में लगाई जाय और शेष आय से एक कालिज चलाया जाय। जिस समय सन् १८२३ में आगरा कालिज स्थापित हुआ तो आय में का १७८००० एकत्रित हो गया था। इसके प्रामेसरी नोट लेलिए गए और उनकी आय भी कालिज को दी जाने लगी। अब प्रतिवर्ष २२०० रुपया आगरा कालिज को मिलता है।

प्रसन्नकुमार ठाकुर का नाम बङ्गाल में



बाबू प्रसन्नकुमार ठाकुर।

प्रसिद्ध है। इन्होंने टागोर ला लेक्चर्स स्थापित कराए और उसके लिये तीन लाख रुपया दान दिया।

हाजी मुहम्मद मोहसिन का दान भी प्रसिद्ध है। इन्हींकी सहायता से हुगली कालेज प्रतिष्ठित हुआ और इन्हीं के दान से आज दिन बङ्गाल में सहस्त्रों मुसलमान उनके स्कूलों और कालिजों में कम फीस दे कर पढ़ सकते हैं। इनके दान का परिमाण नौ लाख के लगभग है।

सर मङ्गलदास नाथूभाई का नाम बम्बई के सब पठित लोग जानते हैं। शिक्षा के लिये जो कुछ



सेर मङ्गलदास नाथूभाई।

इन्होंने दान किया, उससे इनकी बड़ी कीर्त्ति हुई। सन् १८६३ में इन्होंने २०००००) रु० बम्बई विश्वविद्यालय को दिया जिससे एक फेलोशिप स्थापित की गई। इनकी मृत्यु के पीछे इनके पुत्रों ने साढ़े तीन लाख रुपया ग्रौर विश्वविद्यालय को दिया जिसकी ग्राय से बालक शिल्पशिक्षा के लिये इङ्गलैण्ड भेजे जाते हैं ग्रौर वहां उन्हें तीन वर्ष पर्य्यन्त रह कर पढ़ना पड़ता है।

प्रयाग की कायस्थ पाठशाला को स्थापित करने वाले मुन्शी कालीप्रसाद् के नाम से प्रायः सब लोग परिचित हैं। इन्होंने ग्रपनी समस्त सम्पत्ति जो लगभग ५ लाख रुपए के है इस विद्यालय के लिये दे दी है।

सरदार दयालसिंह ग्रौर श्रीयुक्त-जमसेठ जी नौशेरवांजी ताता के विषय में गतवर्ष लिखा जा चुका है। इन महादानियों के दान से ग्रभी भारतवासियों ने लाभ नहीं उठाया है पर ग्राशा है कि इसके प्रवन्धसम्वन्धी सब बातें शीघ्र ही निश्चित् हो जांय।

पढ़े लिखे लोगों में कदाचित ही कोई ऐसा निर्वोध निकलेगा जिसने सेठ प्रेमचन्द् रायचन्द् का नाम न सुना हो। ये महाशय ग्रब तक जीवित हैं। इन्होंने २ लाख रुपया कलकत्ता विश्वविद्यालय को दान दिया था, जिसकी वार्षिक ग्राय १४०० होती है। इससे परीक्षोत्तीर्ण बालकों में से सर्वश्रेष्ठ को ५ वर्ष पर्यन्त एक वृत्ति दी जाती है जिसकी सहायता से वह उतने दिनों तक पठन पाठन में ही केवल ग्रपना समय बिताता है।

इन दानियों के ग्रतिरिक्त बङ्गाल के बाबू भुदेव मुखोपाध्याय का डेढ़ लाख का दान, जो संस्कृत की उन्नति के लिये हुग्रा है, उल्लेख करने योग्य है।

कलकत्ते के बाबू गुरुप्रसन्न घोष ने ४ लाख रुपए का दान विश्वविद्यालय को दिया था, जिससे शिल्पशिक्षा के लिये वृत्तिएं स्थापित की गईं।

यहां पर हमने विद्या के लिये केवल मुख्य मुख्य दानकरने वालों का संक्षेपतः वर्णन किया है। इन्हीं वीरों के धर्म से ग्रब भी देश का मस्तक कभी कभी ऊंचा हो जाता है, पर जितने धन को हमें उच्च

और उत्कृष्ट शिक्षा के लिये आवश्यकता है उसकी पूर्ति हमारे धनीमानी उदारप्रकृति लोगों पर



मुन्शी कालीप्रसाद कुलभाष्कर।

निर्भर है। यदि उन्हें अपने देश से किञ्चित भी हित है तो उन्हें उचित है कि उपयुक्त दान से दानी कहा इहलोक और परलोक दोनों में अमर सुख के भागी हों*।

* इस लेख के लिखने में हमें वङ्गभाषा में प्रकाशित तथा इण्डियन प्रेस में मुद्रित "प्रवासी" नामक मासिकपत्र से विशेष सहायता मिली है।

साहित्यसमालोचना *

[भाग १]

खेद का विषय है कि हमारे यहाँ यह एक प्रणाली सी पड़ी जाती है कि यदि कोई व्यक्ति किसी विषय पर अपने विचार प्रकट करे तो यदि वह समस्त पाठकों के पूर्ण रूपेण चित्तानुसारही हो तब तो कोई बात नहीं, पर यदि वे किसी पाठक के विचारों के लेशमात्र भी प्रतिकूल हुए तो वह महाशय उस लेख को तो सहन करने की बात तक एक किनारे रख चटपट स्वयं लेखकही को अपना घृणापात्र बना बैठते हैं और इसी कारण लेख के स्थान पर वह उस लेखकही के शत्रु बन जाते हैं। पर प्रत्येक प्रवन्ध का प्रत्येक पाठक के विचारानुकूलही होना तो सर्वथा असम्भव है। लेख इस हेतु लिखे जाते हैं कि उनके अवलोकन से पाठकों के विचार उन विषयों की ओर आकर्षित हों जिससे उनपर आन्दोलनान्तर कोई दृढ़ नियम निश्चित हो और उन विषयों पर भ्रममूलक विचार परित्याग किए जायँ। परन्तु भूल भी सिवाय परमेश्वर के और सभी करते हैं, सो यदि किसी प्रवन्ध का लेखक भी अन्य मनुष्यों की भांति किसी भ्रम में पड़ जाय तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। इस कारण यदि कोई महाशय किसी लेख में कोई बात अशुद्ध समझें तो उन्हें सहज स्वभावही से उसे खण्डन कर उसके लेखक

* यह लेख कई कारणों से अब तक न छप सका, यद्यपि लेखकों ने इसे कई मास पूर्व भेज दिया था—सम्पादक।

को सजग कर देना हमें इससे श्रेष्ठ जान पड़ता है कि, उस बेचारे को मूर्ख बनाने अथवा उसपर कटुवाक्यों की बौछार करने लगने की अपेक्षा किसी लेखक के लेखों से कुछ लाभ उठाना, या उसकी त्रुटियाँ दूर करने का प्रयत्न करना, यह दोनोंहीं कार्य्य अति श्लाघनीय हैं। यदि किसी मनुष्य का विचार किसी विषय विशेष पर नितान्त अशुद्ध हो तो भी यह आवश्यक नहीं है कि उसके विचारों का विरोधी स्वयं उसका ही शत्रु हो जाय। हमने पं० श्रीधर पाठक की कविता पर एक लेख लिखा जिसमें गुण और दोष दोनों दिखलाने का हमने यथाशक्ति उद्योग किया है, तो इससे क्या कोई यह सिद्ध कर सकता है कि हम उक्त महाशय के शत्रु या द्वेषी हैं? इसके प्रतिकूल हम दृढ़ता से कह सकते हैं कि हमारे चित्त में पाठक जी की ओर सदाही की भांति सहृदयता और मित्रभाव ही बर्तमान है और रहैगा। वैसेही यदि कोई व्यक्ति हमारे लेखों पर कुछ लिखै तो वह हमारा रिपु न हो जायगा, वरन् हम उसको अपना मित्र मानैंगे। क्योंकि वह हमारी भूल सुधारना चाहता है। पर यदि वह व्यक्ति ऐसा करने में कटु शब्दों का व्यवहार करना ही अपना कर्तव्य मान ले, तो हमैं खेद अवश्य होगा। ये सब बातैं साधारण लेखकों को भी ध्यान में रखनी उचित हैं, परन्तु जब स्वयं एक अति प्राचीन पत्र का सम्पादक ऐसी भूल करता है तब तो आश्चर्य और खेद दोनोंही होते हैं, क्योंकि 'चु कुफ़्र अज़ काबा बरख़ेज़द कुजा मानद मुसल्मानी?" (अर्थात् जब तीर्थस्थानों से ही नास्तिकता का प्रादुर्भाव हो तब धर्म कहाँ रह सकता है?)। अस्तु हम भारतमित्र के सम्पादक महाशय को अपनी भूल सुधारने का प्रयत्न करने पर धन्यवाद देते हैं, परन्तु उनके कटु एवं उपहासपूरित वाक्यों पर खेद और आश्चर्य्य प्रकट करने के सिवाय और क्या कर सकते हैं!

(२) नवम्बर मास की "सरस्वती" पत्रिका में पं० श्रीधर पाठक की कविता पर हमारी समालोचना प्रकाशित हुई थी। तारीख १७ दिसम्बर सन् १९०० के संस्करण में भारतमित्र जी ने हमारी समालोचना पर बहुत कुछ लिखा है। लिखते हैं "जान पड़ता है कि हिन्दी के सौभाग्य का सूर्य अब चमकैगा, क्योंकि हमारे एम० ए०, बी० ए० बाबुओं का दमाग़ अब अर्श से फ़र्श पर उतर आया है"।

आपका यह कथन कि "हिन्दी के सौभाग्य का सूर्य अब चमकैगा" या तो सव्यंग्य है या अव्यंग्य। यह सन्देह हमको इस कारण उपस्थित हुआ कि अपने इस कथन के पुष्ट्यर्थ भारतमित्र ने जो कारण दिए हैं वे उपहासास्पद जान पड़ते हैं। फिर जब समस्त लेख निन्दा से ही परिपूर्ण है तो इसी वाक्य में वह क्यों न होगी?

(क) यह कथन यदि सव्यंग्य है और आपने इसका यह आशय रक्खा है कि अब एम० ए०, बी०ए०, लोगों के लेखों से हिन्दी घोर अन्धकाराच्छन्न हो जायगी तो हमारी समझ में सिवाय आपके और कोई भी कदाचित ऐसा न कहैगा। क्या समस्त मनुष्य अँगरेज़ी पढ़कर मूर्ख हो जाते हैं! अथवा यदि कोई व्यक्ति अँगरेज़ी पढ़ा हो तो उसका हिन्दी जानना असम्भव हो जाय!! और यदि दैव बशात् वह पहले ही से हिन्दी जानता हो तो उसे वह भूल जाय!!! यह एक प्रसिद्ध जनश्रुति है कि एक व्याधि ऐसी होती है कि जिसके आक्रमण से रोगी के नीरोग्य हो जाने पर उसे कोई एक विद्या बिसरण हो जाती है। सम्भवतः अँगरेज़ी हमारी देशभाषाओं (हिन्दी, मराठी, बँगला, इत्यादि) के हेतु इसी व्याधि का काम करती हो, और भारतेन्दु, विद्यासागर, बंकिमचन्द्र, चिपलूनकर, भाण्डारकर आदि सुप्रसिद्ध लेखकों ने अँगरेज़ी जानने के कारण निज मातृ भाषाओं को डुबोही दिया हो!

(ख) परन्तु यदि वह वाक्य अव्यंग्य है तो इससे यही ज्ञात होता है कि आप एम० ए१, बी० ए० लोगों का हिन्दी लिखने में प्रवृत्त होना अच्छा अवश्य मानते हैं, तब न जानैं फिर भी उनपर यह बौछाड़ क्यों! "दिमाग़ को अर्श से फ़र्श पर" उतारने से

भारतमित्र जी का कदाचित यह प्रयोजन हो कि कुछ एम० ए, बी० ए० लोग अब अङ्गरेज़ी छोड़ हिन्दी लिखने लगे हैं तो उनके मतानुसार अङ्गरेज़ी "अर्श" सी उच्च ग्रैार हिन्दी "फ़र्श" सी नीच हुई। पर यह तो हमें आपही के लेख से बिदित हुआ! हम यह जानने को भी उत्सुक हैं कि इसके पूर्व क्या सभी ऐसी उपाधिधारियों के दिमाग़ अर्शही पर थे? ग्रैार यदि ऐसाही है तो उनमें से कतिपय मनुष्यों के अब फ़र्श पर उतरने से क्या उनको गालिप्रदान करनाही उनका समुचित सत्कार है? हिन्दी फ़र्श सी है तो नहीं, परन्तु यदि दुर्भाग्यवश उसमें ऐसी अनुचित लेखप्रणाली संस्थापित हो जाय तो यह दुखद बात सम्भव हो सकती है। हम तो कह सकते हैं कि हम एण्टेंस ही परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पहिले से हिन्दी भाषा के रसिक थे। तब न जानें हमारे मित्र जी का कटाक्ष कहां तक यथार्थ कहा जा सकता है। यदि आप हमारा लवकुशचरित्र काव्यग्रन्थ ध्यानपूर्वक पढ़े होते तो कदाचित आप ऐसी बेपर की फपती न उड़ाते। केवल नाम मात्र की समालोचना करनेवाले महाशय तो यथातथ्य समालोचना होते देख चट लाल लाल आंखें कर ही लिया चाहें। इसीसे तो आप छत्तीसगढ़ मित्र ग्रैार हम पर टूट ही पड़े।

३—"छत्तीसगढ़ मित्र की देखा देखी समालोचना की चाल हिन्दी भाषा में भी चल पड़ी है। यदि इस बहुतायत से समालोचना होती रही तो आश्चर्य्य नहीं जो पोथियों से आलोचना का विस्तार बढ़ जाय"।

भारतमित्र जी के इस अनुमान से प्रतीत होता है कि छत्तीसगढ़ मित्रही ने समालोचना की प्रणाली निकाली है। क्या विश्वनाथ कविराज ने मम्मट भट्ट ग्रैार श्रीहर्ष ने शङ्कर स्वामी की समालोचना हो न की थी, यहां उस की रीति में कुछ विभिन्नता अवश्य थी फिर भाषा में भी भारतेन्दु जी "the only critic of Northern India (उत्तरीय भारत के एक मात्र समालोचक)" कहलाते थे—"कवि व समालोचक" एक पत्र भी पं० कुन्दन लाल जी निकालते थे ग्रैार मित्रवर पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ने भी नैषधचरित चर्चा में तथा साहित्याचार्य स्वर्गवासी पं० अम्बिकादत्त जी व्यास ने गद्य-काव्य-मीमांसा में समालोचना ही की है। फिर "छत्तीसगढ़ मित्र की देखा देखी" हम भी समालोचना नहीं लिखने लगें हैं। हम कह सकते हैं कि हम्मीरहठ ग्रैार पं० श्रीधर जी पाठक की कविता पर समालोचना लिखकर प्रेस में देने के बहुत दिन पश्चात् हमने बा० ठाकुरप्रसाद जी के मुख से छत्तीसगढ़मित्र का नाम सुना ग्रैार श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी की कविता पर समालोचना करने के हेतु हम छत्तीसगढ़ मित्र के जन्म के पूर्व ही काल से सब सामग्री एकत्रित कर रहे हैं ग्रैार बहुत से नोट लिख भी चुके हैं जो हमारे मित्रों पर भली भाँति विदित है, यद्यपि इसके सम्पूर्ण ग्रैार प्रकाशित होने में अभी अवश्य बिलम्ब है। हां, छत्तीसगढ़मित्र समालोचना पर अन्य पत्र पत्रिकाओं की अपेक्षा विशेष ध्यान अवश्य देता है ग्रैार उसकी समालोचना प्रणाली भी प्रशंसनीय है।

आश्चर्य्य कि भारतमित्र जी दो ही चार समालोचकों के होने से भयभीत हो गए कि "पोथियों से आलोचना का विस्तार बढ़ जायगा"! एक ग्रोर तो भारत के प्रसिद्ध विद्वान् पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि भाषा में गद्य काव्य की बड़ी आवश्यकता है ग्रैार दूसरी ग्रोर हमारे मित्र जी डर रहे हैं कि गद्य का एक स्वल्प विभाग (समालोचना) पद्य की समस्त पुस्तकों से बढ़ जायगा!! क्या बारह चैादह सैा प्राचीन व नवीन कवियों के होते भी आधुनिक समालोचक ऐसे प्रबल लेखक हैं कि वह उन सबसे बढ़ जांय!!! यदि अङ्गरेज़ी पर टुक ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि केवल शेक्सपियर के कितने समालोचक हैं। कोलरिज, जरवाइन, हडसन, फ़रनेस, डाउडन, बोडस, चार्ल्स लैम्ब, सिरिल रैनसम आदि प्रधान समालोचकों ही के ग्रन्थ यदि जोड़े जांय तो कदाचित

शेक्सपियर के लेख उन व्यक्तियों के षोड़शांस भी न ठहरैं। परन्तु तब भी उस कविकुलचूड़ामणि को कविता रसातल को न धस गई। फिर न जानैं क्यों हमारे मित्र जी को समालोचकों द्वारा भाषा काव्य नष्ट हो जाने का इतना खटका है !

(४) "सरस्वती में पाठक जी की पुस्तकों की जो आलोचना हुई है उसे देख कर हमें एक लड़के की याद आई। उसने अपनी मिठाई का दोना रेत में पटक दिया और फिर उसे पोंछ पोंछ कर दोने में रखने लगा"।

किसी वस्तु को गोल गोल रीति पर निकृष्ट कह देना अति सुगम है। परन्तु उसमें कोई स्पष्ट दूषण बतलाने में कुछ विचार की आवश्यकता है। सुतरां हमारे मित्र जी के कटाक्ष प्रायः सभी ठौर गोलही गोल हुआ करते हैं। आपको तो एक लड़के की बात याद आई, पर आपका लेख पढ़ हमें यह किम्बदन्ती स्मरण हुई कि 'नाव नाव झगड़ालू आवैं तैरत आवैं साखी (मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त)"–स्वयं पाठक जी तो इसी समालोचना के हेतु हमें वास्तविक धन्यवाद दें और मित्रजी ऐसे बिगड़ैं ! आप कदाचित् अब तक यही माने बैठे हैं कि समालोचना से कवि के सुयश को अवश्यमेव धक्का पहुँचता है। पर वास्तव में सच्चे कवियों के विशेष गुण समालोचना ही द्वारा झलकते हैं, और हमने पाठक जी की गणना ऐसेही कवियों में की है नहीं तो उनकी कविता पर हम समालोचना ही न करते। क्या हमारा मनोबिनोद के द्वितीय और तृतीय भागों को प्रथम की अपेक्षा अति हीन बतलाकर यह कहना कि तो भी आधुनिक मध्यम श्रेणी के कवियों की उपहासजनक कविता से वे दोनों भाग भी कहीं बढ़े चढ़े हैं, भारतमित्र जी को लड़केवाली मनगढ़त को किसी अंश में भी चरितार्थ कर सकता है ? फिर हमारे लेख के सम्बन्ध में इस मनगढ़त का अर्थ लगाना ही कठिन है। इस मिठाई के फेंकने और पोंछने से तो यह व्यञ्जित होता है कि हमने पाठक जी की समस्त कविता को पहिले निकृष्ट कह कर फिर उसे भूषित करने का प्रयत्न किया है। यह मित्र जी की कृपा है और और इस सहृदयता पर हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। वास्तव में हमने पाठक जी का अधिकांश काव्य गुणयुक्त ही बतलाया है, पर शेष स्वल्पांश में कुछ दोष अवश्य आरोपित किए हैं जो वस्तुतः हमें उसमें समझ पड़ते हैं। हां, एक एक दोष बतलाना और उसपर विस्तार करना हमें ठीक न जान पड़ा, इसी कारण दो चार दोष स्थूलरूप पर बतला कर हम विशेष न बढ़े। कदाचित भारतमित्र जी का यह मत है कि यदि किसी पदार्थ की प्रशंसा करने लगें तो उसमें कीच तक लगा जान अपना वर्णन यही करें कि वह कीच नहीं चन्दन है और निन्दा में उसके अमृत को भी विष ही कह दें। पर नीति का बचन यह है कि "शत्रोरपि गुणावाच्या दोषावाच्या गुरोरपि" अर्थात् शत्रु के भी गुण एवं गुरुजनों तक के अवगुण कह देना चाहिए।

[क्रमशः]

निराश प्रेमिक

अहो यातना अमित अनोखो, कासों कहिए ?
कोउ न जाननहार पीर, यातैं चुप रहिए !

दियो प्रान-मन-हृदय-हार, हँसिकै गलमाहीं।
पै वह आपनाओ नहिं चाहत, करि करि नाहीं॥

जापर कियो निछावर, निज सर्वस मनमानो।
सोउ हाय अबहीं लै, बनि बैठ्यो अनजानो॥

हँसि हँसि हाहा खाइ, हाय ! हिय हरत सिराहीं।
पै करि हेत, न हृदय देत निज, बरु अनखाहीं॥

भयो नैन जल खार, प्रेमतृष्णा नहिं मेटी।
जाको चाह्यो,—चाहि सोइ हिय हनत लपेटी॥

मृगतृष्णा मधि, कबै, कौन की आसा पूरी ?
झूठी प्रेमपिपासा, या जग रहत अधूरी॥

जाके सुख सों सुखी, सोइ मम दुख लखि हँसै।
बिन जाने करि प्रेम, मनुज—निज प्रानिन फाँसै॥

परखे बिना परायो मन, नहिं नेह लगैये।
अपने करसों निज पामन, क्यों काठ गहैये॥
प्रेमजाल जञ्जाल जगत में भूल न करिए।
अपनो मानस रतन, कवैां जनि पर कर धरिए॥
बरबस बिपति पराई अपने सीस चढ़ावन।
पाछे पछतावन, बिन जाने नेह लगावन॥
आसा ही दुखमूल, निरासा सीमा सुख को।
प्रेम पिपासा बिना, रहै लाली जग मुख को॥
सुधा जानि विष खाइ सुखायो निज तन चोखो।
तऊ अटल नहिं टल्यो, बज्र सम हृदय अनोखो॥

फ़ोटोग्राफ़ी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

ब्रोमाइड ओपलस (Bromide Opals)

ब्रोमाइड ओपल आलोकचित्र छापने का एक दूसरा उपाय है। जितने प्रकार के चित्र छापने की प्रथाएं हैं उनमें यह सबसे उत्तम और सुन्दर है। इसमें छायालोक बहुत ही सुन्दरता के साथ दिखाई देता है। इसकी गम्भीर घन छाया आलोक के समीप नेत्रों को इतना सुख देती है, कि जिसके देखने मात्र से विमोहित हो जाना पड़ता है। स्फटिक (सफेद पत्थर) के समान सफेद पोरसलेन (Porcelain) की पट्टिओं पर ब्रोमाइड पेपर के समान रासायनिक उपादान से यह चित्र बनता है। ड्राई प्लेट के समान ब्रोमाइड ओपल भी विलायत से बन कर आता है, और जैसे ब्रोमाइड पेपर मुद्रित किया जाता है, उसी प्रकार इसका मुद्रण करना भी बड़ा सुगम है। इसकी परिस्फोटन प्रणाली ब्रोमाइड पेपर के सदृश है। ब्रोमाइड ओपल पर ब्रोमाइड पेपर के सदृश एनलार्जमेण्ट अथवा वर्द्धित चित्र भी मुद्रित हो सकता है।

नेगेटिव से जैसे पी. ओ. पी. इत्यादि काग़ज़ छापे जाते हैं, वैसेही प्रिण्टिङ्ग फ्रेम में नेगेटिव को घटा कर उसके ऊपर ब्रोमाइड ओपल के फिलम के भाग (Film side = जिस ओर ड्राई प्लेट के समान चमक होती है) को लगा दे।, साधारण मोमबत्ती वा लम्प के उजाले से १ फुट के अन्तर पर रख के उसे १५–२० सेकेण्ड आलोकित अथवा एक्सपोज करो। नेगेटिव के आलोक और उसके दूर तथा समीप के अनुसार इसके आलोकित करने में समय का अल्पाधिक्य करना पड़ेगा। केवल आलोकित करने के समय को छोड़ कर और सम्पूर्ण कार्य्य ड्राई प्लेट के सदृश रुबिलाइट में करने होंगे।

परिस्फोटन करने के लिये निम्नलिखित अरक तैयार करलो और उनके ठंढे होजाने पर उन्हें व्यवहार में लाओ।

१ नं०	सलफेट अफ आयरन	२½ आउन्स
	गरम जल	१० आउन्स
	सलफ्यूरिक एसिड	१५ बूंद
२ नं०	एक्सलेट पोटास	१० आउन्स
	गरम जल	४० आउन्स
	पोटासियम ब्रोमाइड	२० ग्रेन

उपर्युक्त द्रव्य के व्यवहार करने के समय १नं० की औषधि १ आउन्स और २ नं० की औषधि का ४ आउन्स लेकर एक में मिलालो। इच्छानुसार उपयुक्त औषधि थोड़ी भी बनाकर काम में ला सकते हैं।

नेगेटिव का फिलम पतला होने पर वा ब्रोमाइड ओपल के अधिक आलोकित होने से आधे पुराने और आधे नए अरक से परिस्फोटन करने का काम लो। इस प्रकार करने से चित्र सुन्दर उज्वलता धारण करेगा। इसके पीछे पानी से न धोकर क्लियरिङ्ग सोल्यूशन* से धोकर फिक्सिङ्ग बाथ में हाइपो के पानी से १०-१५ मिनिट धोने के पीछे साधारण जल से २ घण्टे धोना चाहिए। ब्रोमाइड पेपर के परिस्फोटक अरक से भी इसका कार्य्य हो सकता है।

---

* ब्रोमाइड प्रिंटिङ्ग का प्रकरण देखो।

Formulæ फर्मुला ।

कई एक प्रकार के नए और अत्यन्त आवश्यकीय अरक के विषय की नियमावली भी यहां लिखी जाती है, जिससे आशा है, कि प्रथम शिक्षार्थियों को विशेष लाभ होगा ।

प्लेट के फिलम को मोटा वा घना करने का उपाय ।

Intensifying इनटेनसिफ़ाइङ्ग

(१)

१	परक्लोराइड आफ मरकरी	८० ग्रेन
	गरम जल	४ आउन्स
२	लाइक्वर एमोनिया	२ ड्राम
	ठण्डा जल	४ आउन्स

पहिले एक नम्बर के अरक को ठण्डा करके उसमें प्लेट डुबादो और जब प्लेट साफ होजाय तब साफ जल से उत्तम रीति से धोकर २ नम्बर के अरक में उसे डुबादो। पीछे जब उपयुक्त काला हो जाय तब निकाल लो।

(२)

जो लोग मरकरी व्यवहार करने से डरते हों, वे लोग निम्नलिखित अरक व्यवहार कर सकते हैं।

१	पोटासियम ब्रोमाइड	१८० ग्रेन
	जल	१० आउन्स
२	कापर सलफेट	२४० ग्रेन
	जल	१० आउन्स

क्रमागत इन दोनों अरकों से प्लेट धोकर पीछे एमोनिया के १ ड्राम को १० आउन्स जल में घोलकर प्लेट को काला करलेना होगा।

(३)

१—	साइट्रिक एसिड	४ ड्राम
	फिटकिरी का चूर (विलायती)	४ ,,
	ठण्डा जल	१० आउन्स
२—	आयरन प्रोटो सलफेट	१ आउन्स
	गरम जल	४ आउन्स
३—	नाइट्रेट अफ सिलवर	२० ग्रेन
	ठण्डा जल	१ आउन्स

इसको व्यवहार करते समय १ नं० का चौथा भाग, नं० २ का १ भाग और नं० ३ की कई एक बूँद मिला लेनी चाहिए।

मोटे फिलम वाले प्लेट को पतला करना

Reducing रिड्यूसिङ्ग

(१)

आयरन परक्लोराइड	१ ड्राम
ठण्डा जल	१ आउन्स

इस अरक में प्लेट को डुबाकर पीछे हाइपो बाथ में रख कर फिक्सड कर लो।

(२)

विशुद्ध हाइड्रोक्लारिक एसिड	१० बूंद
ठण्डा जल	४ आउन्स

इस अरक से भी वही काम निकलता है जो नं० १ से होता है।

काठ की डिश को वाटरप्रूफ करना

साधारण जल	½ पाउण्ड
अच्छी मोम	२ आउन्स

इसे टीन के वर्त्तन में गरम करके मिलालो और पुनः काठ की डिश में उलट कर चारों ओर लगा दो। डिश को पहिले ही से सुखा लेना और गरम कर लेना चाहिए।

नेगेटिव में सिलवर रहजाने से उसके साफ करने का उपाय

थोड़ी सी रुई को साईनाइड पोटासियम में जो बहुत ही तेजरहित हो भिगोकर प्लेट के दाग लगे हुए स्थान पर धीरे धीरे लगाओ। जहां अधिक लगा हो उस स्थानपर किञ्चित अधिक जोर से उसे मलो और पीछे साफ जल से धोकर सुखाने के अनन्तर नेगेटिव वार्निश कर दो। [शेष आगे



ओड़छा राजभवन का भीतरी दृश्य ।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] अगस्त १९०१ ई० [संख्या ८

विविध वार्ता

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि स्वर्गवासी प्रोफ़ेसर मैक्समूलर ने योरप में संस्कृत विद्या के प्रचार ग्रैार भारतवर्ष के सम्मान ग्रैार गैारव के लिये जो कुछ किया है वह कदाचित ही किसी दूसरे से बन पड़े। इनकी मृत्यु के पीछे इनका बृहत् पुस्तकालय बिका ग्रैार उसे जापान के ब्यारन टवास्की ने टोकियो के राजकीय विश्वविद्यालय के लिये खरीद लिया। हमें सन्तोष है कि यह पुस्तकालय ग्रैार किसी देश में न जाकर जापानही में गया, पर भारतवर्ष के लिये इससे बढ़कर लज्जा की ग्रैार कोई बात नहीं हो सकती कि ग्रसंख्य राजों महाराजों ग्रैार धनिकों के रहते किसोने भी इस पुस्तकालय को खरीद कर भारत को ग्रकृतज्ञता के कलङ्क से बचा एक बड़े भारी ऋण से मुक्त न किया। भारतवर्ष सा ग्रकृतज्ञ देश कदाचित भूमितल पर दूसरा न हो। प्रोफ़ेसर मैक्समूलर की मृत्यु पर हमने सभाएं कीं, शोक प्रकाश के लिये लेख लिखे ग्रैार उनके वंश के लोगों को सहानुभूति-सूचक पत्र भेजे, परन्तु इतनाही करके हम थक बैठे। हा दुर्भाग्य भारत! तेरा एक भी ऐसा सपूत न निकला जो इस पुस्तकालय को यहां लाने के लिये धन ग्रर्पण करता!!!

* * *

हमारे हिन्दूशास्त्रों का यह सिद्धान्त है कि जीवधारी जैसे जैसे कर्म करता है उनके ग्रनुसार वह जन्म पाता है, यहां तक कि पशु पक्षी ग्रच्छा कर्म्म करने से मनुष्य का जन्म पा सकते हैं। इसी सिद्धान्त से मिलता जुलता सिद्धान्त प्रोफ़ेसर डारविन का था। उनका कथन था कि छोटे से छोटे कीट पतङ्ग उन्नति करते करते मनुष्य का शरीर धारण करते हैं। युरोपीय वेदान्तियों ने इसी सिद्धान्त का नाम "ला ग्राफ़ इवोल्यूशन" रक्खा है। इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिये प्रोफ़ेसर डारविन ने यह निश्चय किया था कि मनुष्यों का पूर्व रूप बन्दर था जिससे उन्नति करके मनुष्य का शरीर

बना। परन्तु मनुष्य और बन्दर के बीच का कोई ऐसा जीवधारी नहीं मिलता था जिसमें दोनों के गुण हों और जो दोनों के बीच की शृङ्खला हो। पर उस समय इसका कुछ पता नहीं लगा था। अब सर हेनरी जानस्टन ने यह पता लगाया है कि अफ़्रिका के कांगो नामक वन में एक प्रकार के मनुष्य मिले हैं जिनका मैले पीले रंग का चमड़ा, सटी हुई आंखें, ऊंची भौं और चिपटा सिर है। इनके बाल हवशियों की भांति घुँघराले और कभी कभी भूरे रङ्ग के भी होते हैं। इनकी बांह लम्बी और पैर छोटे होते हैं। सर हेनरी जानस्टन का अनुमान है कि ये ही लोग प्रोफ़ेसर डारविन की शृङ्खला की अब तक अप्राप्त और लुप्त कड़ी हैं। देखा चाहिए वैज्ञानिक मण्डली अब क्या सिद्ध करती है।

***

'समालोचक समिति' की चर्चा अभी तक शान्त नहीं हुई है और न उसका कुछ फल ही अभी देखने में आया है। गत मई मास की सरस्वती में हमने इस सम्बन्ध में कई प्रस्ताव किए थे और काशी नागरीप्रचारिणी सभा से प्रार्थना की थी कि वह उनपर उचित विचार करे। सभा ने उन प्रस्तावों पर अनेक लोगों की सम्मति ली और बड़े विवाद के पीछे यह निश्चय किया कि सभा का इस विषय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है। इसके कई कारण माने गए हैं। प्रथम तो यह कि समिति करके पुनः वह उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध न रख सकती है और न रखना सम्भव है, और ऐसा न करने से सभा का पूर्ण अधिकार प्रकाशित समालोचनाओं पर न रह सकेगा और ऐसी अवस्था में सभा उस समिति से अपना सम्बन्ध नहीं रक्खा चाहती। दूसरे यह कि कभी कभी समालोचकों के सामने ऐसे ग्रन्थ भी विचारार्थ आ जांयगे कि जिनके विषय का पूर्ण सम्बन्ध धर्म और राजनीति से हो और इन विषयों में सभा अपने नियमानुसार हस्तक्षेप न कर सकेगी। तीसरे समिति के सभ्य भिन्न भिन्न स्थानों के रहने वाले हैं, अतएव जब तक वे एक स्थान में एकत्रित न हों तब तक कोई समालोचना सर्वसम्मति से स्थिर न हो सकेगी, और सब लोगों का बेर बेर एक स्थान पर इस कार्य के लिये एकत्रित होना असम्भव है। इन्हीं सब कारणों से काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने यह निश्चय किया है कि वह इस समिति के स्थापन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करेगी, परन्तु साथ ही इस बात का भी समझ लेना उचित है कि पुस्तकों पर समालोचना अवश्य होनी चाहिए।

***

छत्तीसगढ़-मित्र के सम्पादक महाशय ने इस बात पर खेद और आश्चर्य प्रकट किया है कि काशी की सम्पादक-समिति क्यों और कैसे टूट गई। इस समिति के तोड़ देने के कई कारण हुए। परस्पर में अनेक (लेख सम्बन्धी) विषयों में मतभेद, कई सभासदों का अनावकाश, एकही मनुष्य पर सम्पादन का बोझ पड़ जाना, अन्य लोगों का यह विचार कि काशी ही से सम्पादक क्यों चुने गए, क्या बाहर से हिन्दी के योग्य लेखक नहीं चुने जा सकते थे,—ऐसे ही कारण हुए कि जिनसे सम्पादक-समिति का तोड़ देना आवश्यक जान पड़ा। इस समय समिति के टूट जाने पर अथवा उसकी आधुनिक कार्य-प्रणाली पर जो कभी कभी कटाक्ष हो जाते हैं, उनका कारण हमारे "मित्र" को यह समझ लेना चाहिए कि कितने ही लोग तो अपने चित्र और चरित्र भेज देते हैं और साथही लिखते हैं कि इन्हें छाप दीजिए तो हम ग्राहक हो जांय, अथवा छपाई और चित्र बनवाई का व्यय भी हम देंगे। ऐसे महानुभावों को हम दूरही से साष्टांग प्रणाम करते हैं और यही उनकी रुष्टता और उनके असभ्य कटाक्षों का मूल कारण होता है। हां, जो महानुभाव हमारे सच्चे दोष दिखाते हैं उनके हम चिर-कृतज्ञ रहेंगे। सम्पादक-समिति के टूट जाने के साथही साथ यह भी प्रबन्ध किया गया है कि लेखकों को निज सामर्थ्यानुसार कुछ पुरस्कार भी दिया जाया। जिन

महाशयों ने इसे ग्रहण करना स्वीकार किया है उन्हें यह बराबर दिया जाता है। हमारी समझ में तो हिन्दी लेखों के लिये चाहे एकही पैसा पुरस्कार क्यों न मिले उसे ग्रहण करना हिन्दी का सम्मान बढ़ाना और अपनी योग्यता का आदर पाना है। अस्तु, अब सभा से तो निश्चय हो चुका है कि वह सम्पादक-समिति स्थापित न करेगी, तो अब दूसरा उपाय इस कार्य के साधन का कौन-सा है? अन्य स्वतन्त्र समिति के स्थापित होने के हम पक्ष में नहीं हैं, क्योंकि उससे हमें अनेक विघ्नों की आशंका है। समालोचक पत्र का निकालना भी एक असम्भव सा काम है। प्रथम तो उसके ग्राहक नहीं होंगे कि उसका ख़र्चा निकल सके, दूसरे इस बोझे को अपने सिर पर उठाने वाला कोई दिखाई नहीं देता। सभा ने अभी नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका और निकाली है। उसकी आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं है कि वह "समालोचक" पत्र निकाल सके। दूसरे उसका यह विचार है कि यदि विशेष आय हो सके तो पहिले "ग्रन्थमाला" और "पत्रिका" दोनों का आकार बढ़ा दिया जाय, क्योंकि इनसे हिन्दी के विशेष उपकार की सम्भावना है। रहे इण्डियन प्रेस के स्वामी। वे अभी एक नवीन पत्र निकालने का साहस नहीं कर सकते, क्योंकि अभी सरस्वती ही में सैकड़ों की प्रति वर्ष हानि उठानी पड़ती है। ऐसी अवस्था में हमारा यही सिद्धान्त है कि पत्र सम्पादक अपने अपने पत्र में उपयुक्त समालोचना करना प्रारम्भ कर दें। सरस्वती में भी यथासाध्य इस नियम का पालन किया जायगा और जो महाशय किसी पुस्तक की समालोचना लिख कर भेजेंगे, और यदि वह सम्पादक को स्वीकृत होगी, तो सरस्वती में छाप दी जायगी। यदि हमारे छत्तीसगढ़ मित्र इस सम्मति को स्वीकार करें तो हम इस कार्य के लिये कुछ नियम बनाकर इसे प्रारम्भ कर सकते हैं।

ग्रन्थकार-लक्षण

१

एक प्रवासी ज्ञान-निधान,
तीर्थराज-वासी, गुणवान,
बुद्धि-राशि, विद्या का वारिधि, पास हमारे [आया है।
नाना कथा नवीन नवीन
कहने में वह महा-प्रवीण;
ग्रन्थकार-माहात्म्य मनोहर उसने हमें सुनाया है॥

२

सुन कर वह माहात्म्य अपार;
सोच समझ कर भले प्रकार;
परमानन्द-रूप-नद में मन बहता है लहराता है।
उसका ही ले कर आधार;
निज वचनों का कर विस्तार;
लक्षण-मात्र ग्रन्थकारों का यहां सुनाया जाता है॥

३

शब्द-शास्त्र है किसका नाम?
इस झगड़े से जिन्हें न काम;
नहीं विराम-चिन्ह तक रखना जिन लोगों को [आता है।
इधर उधर से जोर बटोर,
लिखते हैं जो तोड़ मरोड़;
इस प्रदेश में वे ही पूरे ग्रन्थकार कहलाते हैं॥

४

भला बुरा छपवाए सिद्ध;
धन न सही; नाम ही प्रसिद्ध;
नाटक, उपन्यास लिखने में ज़रा न जो सकुचाते हैं।
जिनके नाच कूद का सार
बँगला-भाषा का भण्डार,
वे ही महा-महिम-विद्वज्जन ग्रन्थकार कहलाते हैं॥

५

जिनके लोचन कोटर-लीन;
कच-कलाप तक तैल-विहीन;
जिनके जर्जर तन को मैले कपड़े सदा छिपाते हैं।

कुटिल कटाक्ष किन्तु दुर्दान्त ;
मति भी, गति भी कुटिल नितान्त ;
वे ही भारत-वर्ष देश में ग्रन्थकार-पद पाते हैं ॥

६

अन्यदेश-भाषा का ज्ञान
कालकूट के घूंट समान ;
स्वयं मातृभाषा भी जिनको देख देख घबड़ाती है।
भाड़े पर रख विज्ञ विशेष ,
लिखवाते हैं जो निज लेख ,
ग्रन्थकार-पदवी उनको ही दौड़ दौड़ लिपटाती है॥

७

जिनकी जिह्वा की खर धार
देख, चमत्कृत छुरे हज़ार ,
किन्तु लेखनी जिनके कर में धार-हीन हो जाती है।
लेखन-कला-कुशलता-हीन ;
बातों में जो बड़े प्रवीण ;
ग्रन्थकार-पदवी उनको ही बिना मोल मिल [जाती है॥

८

लक्ष्मी जिन लोगों के द्वार
आती नहीं एक भी बार ;
सरस्वती जिनके प्रताप से भूतल से भग जाती है।
मानों मत्त-गयन्द समान ;
अथवा मूर्त्तिमान अभिमान ;
उनको ही सद्ग्रन्थकार की पदवी गले लगाती है॥

९

पाकालय का अन्तर्भाग
नहीं देखता जलती आग ;
किन्तु सदा ईर्षानल से तन जिनका जलता रहता है
सुर गुरु को भी गाली-दान
देने में जिनको लज्जा न ,
उनको ही ऊंचे दरजे के ग्रन्थकार जग कहता है॥

१०

ए, बी, सी, डी का भी ज्ञान
जिनको अच्छी भाँति हुआ न ,
अँगरेज़ी उद्धृत करने में किन्तु न जो शरमाते हैं।
ऐसे विद्या-बुद्धि-निधान
जिनका बड़ा मान सम्मान ,
निश्चय वेही परम प्रतिष्ठित ग्रन्थकार कहलाते हैं॥

११

संस्कृत-भाषा कौन पदार्थ ?
जिन्हें न यह भी विदित यथार्थ ;
धर्म्मशास्त्र का मर्म्म किन्तु जो लिख लिख कर [समझाते हैं।
जन-समाज-संशोधन-कार ;
व्यर्थ-वाद जिनका व्यापार ;
सत्य सत्य वेही अति उत्तम ग्रन्थकार कहलाते हैं॥

१२

अपने ग्रन्थों का प्रति वर्ष
विज्ञापन लिख स्वयं सहर्ष ,
व्यास और वाल्मीकि तुल्य जो अपने को बतलाते हैं।
अथवा पुत्र , मित्र का नाम
दे कर जो निकालते काम ,
अति गम्भीर-ग्रन्थकारों के गुरुवर वे कहलाते हैं॥

१३

अपनी पुस्तक की सानन्द
स्वयं समीक्षा लिख स्वच्छन्द ,
अन्य नाम से अख़बारों में जो शत बार छपाते हैं।
निज मुख से जो गुण-विस्तार
करते सदा पुकार पुकार ,
ग्रन्थकार-पद- योग्य सर्वथा वेही समझे जाते हैं॥

१४

गृह में गृहिणी कोप-निधान
देती जिन्हें न आदर-दान ;
बाहर जिन्हें न पाठक-गण भी भक्ति-भाव दिख- [लाते हैं।
जिनका कहीं नहीं सम्मान ;
तिस पर घोर घमण्ड घटा न ;
ग्रन्थकार-सिंहासन ऊपर आसन वही लगाते हैं॥

१५

ग्रह ज्यों रवि के चारों ओर
किया करै हैं दौरा दौर ,
त्यों पुस्तक-विक्रेता की जो बहु प्रदक्षिणा करते हैं।

दग्धोदर जो किसी प्रकार
भरते हैं सदैव झख मार ;
ग्रन्थकार-गौरव की झोली वेही यश से भरते हैं ॥

१६

किसी समालोचक के द्वार
सिर घिस घिस कर बारम्बार ,
निज पुस्तक की समालोचना जो सविनय लिख-
[वाते हैं ।
यदि आशय पाया प्रतिकूल ,
ढूंढ़ा और कहीं अनुकूल ;
ग्रन्थकार-कुल-कुमुद-चन्द्रमा वे ही माने जाते हैं ॥

१७

टेक्स्टबुक्स की सभा प्रधान ;
उसके जितने सभ्य सुजान ,
उनके प्रिय-पुत्रादिक को जो मोदक मञ्जु खिलाते हैं।
आते हैं जो प्रातःकाल ;
और झुकाते हैं निज भाल ;
ग्रन्थकार-कनकासन ऊपर वे ही मज़े उड़ाते हैं ॥

१८

नूतन-चित्र-चरित्र-प्रचार
करके उनकी रुचि अनुसार ,
निज पुस्तक में जो धनिकों की व्यर्थ बड़ाई गाते हैं।
उनसे रख भिक्षा की आस ,
करते हैं जो वचन-विलास ,
ग्रन्थकार-गुरुवों के भी वे कर्णधार कहलाते हैं ॥

१९

ग्रन्थकार-गुण-गण निःशेष
गान नहीं कर सकता शेष ;
इसी लिये हम इस वर्णन को आगे नहीं बढ़ाते हैं।
हे हे ग्रन्थकार ! गुण-धाम !
हे समर्थ ! हे पावन-नाम !
शत योजन से हम यह अपना मस्तक तुम्हें झुकाते हैं॥

रोशन आरा

तीसरा परिच्छेद

दूसरे दिन राजा रतनचन्द उन्नाव का पट्टा अपने नाम लिखके मोहर दस्तख़त करवाने वज़ीर के घर गए, पर जाके सुना कि वे घर पर नहीं हैं। राजा मन ही मन कुछ हँसे। वज़ीर जहां थे वे जानते थे। वज़ीर चाहे जहां रहे राजा के लिये ड्योढ़ी खुली रहती थी। वे आराम बाग़ में पहुंचे।

राजा को देख खोजा अख़तर सिर हिला के धीरे से बोला वज़ीर साहब अभी आराम से नहीं उठे हैं।

"गुसलख़ाना भी नहीं हुआ है ?"

"नहीं"

"हैं ! बेगम साहेबा कहां हैं ?"

"यहां नहीं हैं, वह तो कल रात ही को चली गई थीं।"

राजा को आश्चर्य्य हुआ, जब वही नहीं हैं तब अभी तक वज़ीर क्यों नहीं उठे और उन्होंने क्योंकर रात ही को उसे विदा भी कर दिया। ऐसी सुन्दरी स्त्री मिलने पर तो इतनी जल्दी छोड़ते नहीं। ज़रूर इसमें कुछ छिपा भेद है।

राजा ने कहा "इतनी देर तक तो उनकी सोने की आदत नहीं है। उनके पास भी कोई नहीं हैं। तुम्हारे जी में कुछ शक तो नहीं होता ?"

"बिन बुलाए क्योंकर अन्दर जाऊं ? शायद ख़फ़ा हों"।

राजा ने कहा "तुम जाओ, शायद ख़फ़ा हों तो मेरा नाम ले देना कि किसी ज़रूरी काम से आए हैं, तो ख़फ़ा न होंगे"।

यह तो सब लोग जानते ही थे कि राजा रतनचन्द वज़ीर के परले सिरे के कृपापात्र हैं, इससे बिना कुछ कहे खोजा आरामख़ाने के अन्दर चला; उसके पीछे राजा भी हो लिए। द्वार के पास पहुंच धीरे धीरे उसने किवाड़ खोले।

भीतर देखते ही खोजा चीख मार अन्दर घुस पड़ा, राजा रतनचन्द भी घबरा कर उसके पीछे जा घुसे। उसे यह डर था कि कहीं वज़ीर का बाल बाँका हुआ ते राजा जीते ही मर मिटेंगे।

बड़े दुख की बात है कि बादशाह के शाह वज़ीर-उल्मुल्क सामान्य कैदी से हाथ पांव बांधे धर्ती पर नीचा सिर किए बैठे हैं, उठने की ताकत नहीं। दोनों ने मिल चट पट उनके बन्धन खोले। अपमान, अभिमान दुःख और क्रोध के मारे वज़ीर की आँखों में आँसू भर आए थे। बन्धन से खुलते ही उन्होंने खोजा को लात मारी और बोले—"निमकहराम कहीं का, मेरे मकान के अन्दर चुपके से दुशमन घुस आवे और तुझे कुछ ख़बर भी न हो"।

रोते रोते हाथ बाँध खोजे ने अर्ज़ की कि खुदा-वन्द! इस महल का पहरा ताबेदार के ज़िम्मे नहीं है; और कल रात को हुज़ूर ने ताबेदार को दूसरी जगह तैनाती करदी थी। बेगुनाह ताबेदार कसूर वार होता है"।

वज़ीर रतनचन्द की ओर देखकर बोले, "मेरी नज़रों से हट जा, मैं तेरा मुँह देखना नहीं चाहता"।

दस्तबस्ता हो राजा ने अर्ज़ की "ताबेदार की क्या ख़ता है?" असल में बात यह थी कि खोजा और राजा ने उनको उस हालत में देखा था, उसी पर खिजला के जो सामने आया उसीको फटकार सुनाई। फिर नौकरों को बुलवा कर उनसे बहुत से सवाल किए, पर क्योंकर कोई अजनबी महल के अन्दर गया यह कोई भी न बता सका। इस पर वज़ीर ने ख़फ़ा होके उनको इतने कोड़े बेंत लगवाए कि वे लोग मूर्छित होकर गिर पड़े; पर कह कुछ भी न सके।

तब वज़ीर राजा रतनचन्द से वह जो रात के अन्दर आया था उसका हुलिया बयान कर बोले "जो वह दिल्ली भर में कहीं मिले तो चाहे जीता या मरा उसे मेरे हुज़ूर में हाज़िर करो। जो उसे जीता पकड़ लाओ तो मैं बहुतही खुश हूंगा"। और उस स्त्री के बारे में बोले मैंने उसके लिये इतनी ज़हमत उठाई है इस लिये उसे न छोड़ूंगा, जहां मिले या जैसे मिले उसे मेरे पास लिवालाओ।

राजा रतनचन्द बिना एक शब्द भी कहे यथा नियम धर्ती तक सिर झुका सलाम कर वहां से रुख़सत हुए। उन्नाव परगने की सनद ज्यों की त्यों उनके रूमाल में बँधी की बँधी रह गई, क्योंकि उस बारे में कहने का कोई मौका न था। इतनाही नहीं, वरन् वज़ीर के हुक्म को सुन राजा के होश चक्कर होगए थे। कहां तो बिना तरद्दुत के एक पर्गना मिला जाता था। भला वह बात तो एक ओर रही, ऊपर से ऐसा हुक्म लगा जिसका पूरा होना बस भगवान ही के हाथ था। भले ही राजा रतनचन्द का बहुत चढ़ा बढ़ा समय था, शहर भर में उनकी तूती बोलती थी, पर तौ भी वज़ीर के सामने वे एक सामान्य किंकर थे। वज़ीर चाहे तो एक फूंक में उन्हें न जाने कहां का कहां उड़ा दें। क्योंकर और कहां से राजा उसे गिरफ़्तार करेंगे; फिर न जाने वह किसी बड़े उमराव का भेजा हुआ हो तो राजा से एक नई दुशमनी बढ़ेगी, न जाने उसका कैसा फल हो; न जाने कैसी खोटी सायत से उस रमणी पर वज़ीर की नज़र पड़ी थी और न जाने किस सायत में वे उन्नाव का परवाना लिख लेगए थे।

घर आ कर राजा ने सुना कि उनकी मुलाकात के लिये कोई बहुत देर से बैठा हुआ है। कोई ऐसा ही ज़रूरी काम है कि बिना राजा से मिले वह हरगिज़ लौट नहीं सकता। राजा ने उसे बुलाने की आज्ञा दी।

जब वह आया तो उसे देख राजा ने उसके पहनावे से अनुमान किया कि यह फ़ारस देश का रहनेवाला है, इससे फ़ारसी में पूछा "तुम क्या चाहते हो?"

उसने कहा "जनाब! मैं आपका पड़ोसी हूँ। यहां आए मुझे अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। आपकी हवेली के पिछवाड़े में अपनी स्त्री के साथ रहता

हूं। कल रात को मेरे घर पर डाँका पड़ा, डाँकू मेरी स्त्री को ले भागे"। यह कहते कहते उसके नथुने फड़कने लगे, और ललाट की नसें फूल उठीं।

राजा रतनचन्द जी मैं सोचने लगे "मुझे यह क्यों कहने आया है ? मैं इसका क्या करूं ?"

फारसवासी ने कहा-"आप वज़ीर के बड़े मुलाहिज़ेदार हैं और बड़े इख्तियार रखते हैं, आप जो जी में लावें वही कर सकते हैं। सिवाय आपके पास और कहां जाऊं ? यह मुझे ख़बर न थी कि दिल्ली में भले घर की स्त्रियों पर यों अनर्थ हुआ करता है। मुझे तो गुमान था कि यहां गृहस्थों की स्त्रियों की भली प्रकार रक्षा होती होगी"।

राजा—"क्या यह झूठ है ?" ज़रा सोच के राजा ने पूछा 'क्या किसी पर तुम्हें शक है ?"

ज़रा चैांकके वह बोला—"भला यह मुझसे क्यों पूछते हैं ?"

राजा-"जो कहने में कुछ डर हो तो न कहो"।

फारसवासी-"बस, एक आदमी पर मुझे सन्देह है। उसीके लिये मैं अपना देश छोड़ यहां आया। मैंने यह सोचा था कि इतनी दूर वह मेरे साथ थोड़े ही आने लगा है। अगर वही है तो मनुष्य से सहायता मांगना व्यर्थ है, क्योंकि आदमी उसका कुछ भी नहीं कर सकता"।

राजा—"क्यों ?"

फारसवासी—वह बड़ा कड़ा जिन्न है।

राजा मुस्किराए, क्योंकि भूतपिशाच की बातों पर उन्हें विश्वास न था। पूछा—"वह किस डील डौल का है ?" फारसवासी का कहा हुलिया वज़ीर के हुलिए से मिलता हुआ था। राजा समझ गए कि उस फारसवासी कि स्त्री को हर ले जानेवाला और वज़ीर को बाँधनेवाला एक ही आदमी है। राजा ने कहा "अच्छा, वह जल्दी पकड़ जायगा। उसने यहां और भी अपराध किए हैं"।

फारसीवासी ने लम्बी सांस लेकर कहा-"आप अभी उसकी ताक़त नहीं जानते"।

राजा—"तुम उसका पता तो लगाओ। मैं भी आदमी तैनात किए देता हूं, जो कुछ ख़बर लगेगी तुम्हें मालूम हो जायगा"। फारसीवासी उदास हो कर लैाट गया।

वजीर घर लैाट आए थे। राजा रतनचन्द किसी दूसरे से यह सन्देसा न कह स्वयम् आप ही वज़ीर के पास गए। जल्दी के कारण अर्दली में अधिक भीड़भाड़ साथ न ली। जाते जाते रास्ते में पतली सी कुछ अन्धेरी एक गली थी, उसके अन्दर बादशाही फौज की वर्दी पहिरे कुछ लोग खड़े थे। उनके सर्दार ने आगे बढ़कर पूछा "कैान जाता है ?"

राजा रतनचन्द के अर्दलीवाले बादशाही नैाकरों की ज्यादा परवाह नहीं करते थे, क्योंकि यह तो उन्हें मालूम ही था कि असल में बादशाह कैान है। इससे अलगज़ोपन से बोले, "राय रायान राजा रतनचन्द की सवारी है। हटो रास्ता छोड़ के खड़े हो'।

रास्ता छोड़ना कैसा, उसने तो आकर राजा की पालकी पकड़ कर कहा बोला—"राजा साहेब! आपकी गिरफ्तारी का हुक्म है; यह देखिए गिरफ्तारी का परवाना"—यह कहकर उसने उन्हें परवाना दिखाया।

रतनचन्द ने देखा परवाने पर शाही अँगूठी की मोहर लगी हुई है। वज़ीर राजा से मोहर वाली अँगूठी की बात कहना भूल गए थे। यह तो राजा जानते ही थे कि वह अँगूठी हमेशा वज़ीर की उंगली में रहती है, और जब ऐसा ही कोई ज़रूरी काम पड़ता है तब उससे मोहर लगाई जाती है। इससे तो जान पड़ता था कि ख़ास वज़ीर ने ही राजा की गिरफ्तारी का परवाना जारी किया है। राजा की दोनो जांघें थरथराने लगीं, सिर में चक्कर आ गया, कांपते हुए हाथ से परवाना लेकर सिर से लगाया; डबडबाई आंखों और रूँधे शब्दों से बोले "बादशाही हुक्म मुझे

सिर आंखों से मंज़ूर है। ईश्वर उन्हें चिरञ्जीव रक्खें"।

सिपाहिओं को यह सुन बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि राजा रतनचन्द की बादशाह पर कब से इतनी भक्ति श्रद्धा हुई। उन्हींमें कोई एक विश्वासी मनुष्य भी था, वह आगे बढ़ राजा के कान से लग के बोला, "महाराज! आप यह कर क्या रहे हैं? जो हम लोगों को हुक्म हो तो इन्हें मार कर भगा दें।"

राजा ने सिर हिला कर कहा, "जब इस परवाने पर शाही मोहर है तो ज़रूर यह कुतुब-उल्-मुल्क के इजलास से जारी हुआ है, फिर उस पर उज़्र कैसा?" आकाश की ओर निहार राजा एक ठंढी सांस भर के बोले "जो कुछ भाग में लिखा है सो होगा!"

राजा ने अपने अरदली वालों को कहा–"तुम लोग कोठी पर लौट जाओ, मैं इन सिपाहियों के साथ जाता हूं, क्योंकि मुझे तो बादशाही हुक्म मानना है।" और झगड़े से भी कोई फल न होता, क्योंकि अरदलीवालों से सिपाही गिनती में अधिक थे, इससे राजा की अर्दली अवश्य ही हार जाती।

पालकी पर से राजा को उतरना न पड़ा। सैनिकों की आज्ञा के अनुसार कहार उनके साथ ही साथ पालकी ले चले। राजा के अर्दलीवाले भयभीत और उदास हो घर लौट गए।

चौथा परिच्छेद

राजा रतनचन्द क़ैद हो गए, एक घड़ी भर में सारी दिल्ली में यह बात फैल गई। इस ख़बर को सुन बहुतों को इस लिये खुशी हुई कि बहुत गिरी अवस्था से रतनचन्द वज़ीर की मेहरबानी से ऊंचे दर्जे को पहुंचे थे और लोगों पर मनमाना अत्याचार करते थे, पर वज़ीर के भय से कोई कुछ न कह सकता था। इसीसे उसके विपद के समय में भी किसीने तर्स न की, जो कुछ भय या दुःख हुआ, वह उनके घरवालों को और उन्हें जिनकी उनसे जीविका थी। उनके कई एक मुसा हब वज़ीर के सामने जाके रोने और दुःख करने लगे।

पहिले तो अबदुल्ला खां को विश्वास ही नहीं हुआ। वह कहने लगा कि बिना मुझे कहे बादशाह भी राजा को गिरफ्तार या किसी प्रकार उनका अपमान नहीं कर सकते हैं। भला राजा की तो बात दूर है, मेरे दरवाज़े के एक कुत्ते का भी बिना मेरी राज़ी के कोई अपमान करे! फिर भला राजा और मैं तो दो कालिब एक जान हैं, वे कब ऐसा कर सकते हैं? मुझे तो किसी तरह भी एतबार नहीं होता।

राजा रतनचन्द के एक मुसहिब ने अर्ज़ की कि बादशाही शरीररक्षक सेना-वालों ने राजा को गिरफ्तार किया है और गिरफ्तारी के परवाने पर शाही अँगूठी की मोहर थी।

इतना सुनते ही वज़ीर को चट अँगूठी की बात याद आगई। तब तो घबरा के बोले "जो रतनचन्द पर कोई मुसीबत आगई है तो ज़रूर मुझपर भी आवेगी। सिर्फ़ राजा ही की फिक्र नहीं है, बल्कि मेरी हिफ़ाज़त भी भरपूर होनी चाहिए। इसमें किसी तरह की गफ़लत न होनी चाहिए। अच्छा अब ज्यादः बात करने का मौक़ा नहीं है। राजा के बचाने में कोई बात उठा न रक्खी जावेगी। बस, इतना समझ अब तुम लोग अपने घर जाओ"।

तुर्त ही वज़ीर उठ के घर के अन्दरवाले राज-महल में गए, जहां जापनाह बुलबुल की लड़ाई देख रहे थे। यह सुनते ही कि मुलाकात को कुतुब-उल-मुल्क आए हैं, चट पट उठ ड्योढ़ी तक आए। ख़ास दीवानख़ाने के बगल वाले एक छोटे से घर में वज़ीर साहेब ठहरे हुए थे। बादशाह का आना सुन चट उठ कुछ आगे बढ़ कर दरबारी क़ायदे से कोरनिश बजालाए, और दस्तवस्ता हो बोले जापनाह! किसी ख़ास अर्ज़ करने के लिये ताबेदार हाज़िर हुआ है।

बादशाह का रुख़ देख सब लोग बाहर चले गए। बादशाह फर्रुख़सियर हाथ थाँभ वज़ीर को

अपने बग़ल में बैठा बोले " क्या है ? आज तुम्हारे चेहरे पर कुछ उदासी छा रही है, सब ख़ैरियत तो है न ? किसी तरफ़ किसी दुशमन की चढ़ाई तो नहीं है ? "

वज़ीर ने कहा, " जहांपनाह ! बाहरी दुशमन का कोई ख़तरा तो नहीं है, पर घरेऊ दुशमन ही का डर है। एक अजीब ग़रीब ख़बर कहने आया हूं " ।

बादशाह ने समझा न जाने क्या विपद् आने वाली है। घबरा कर बोले, "क्या है कहो भी ? "

वज़ीर ने कहा " रतनचन्द क़ैद हो गए। शहर भर में शोहरत है कि ख़ुद बादशाह के हुक्म से वे क़ैद हुए हैं " ।

बादशाह ने वज़ीर की ओर देख कर कहा "क्या मुझसे मज़ाक कर रहे हो ? बिना तुमसे मशविरा किए या पूछे भाले कभी मैंने कोई काम किया है ? और फिर रतनचन्द ! उस बिचारे ने मेरा क्या बिगाड़ा है कि मैं उसे गिरफ्तार करूंगा ? क्या मुझे नहीं मालूम कि उसपर तुम्हारी अवल दर्जे की मेहरबानी रहती है " ।

' इसीसे तो मुझे एतबार नहीं आता, पर दो एक मेरे ख़ास आदमियों ने उस परवाने को अपनी आंखों देखा है। वे मुझे कहते थे कि उस परवाने पर ख़ास बादशाही अँगूठी की मोहर थी " ।

उदास हो बादशाह ने कहा " वह अंगूठी तो तुम्हारे ही पास है न ? "

वज़ीर ने उँगली दिखा के कहा—"वह चोरी हो गई है" । चौंक के बादशाह बोले—"क्योंकर?"

जो सच कहते हैं तो बहुत सी बातें खुल पड़ती हैं, इससे मुह फेर के धीरे से बोले—"मेरे अनजाने में चोरी हो गई" ।

यह सुन के साफ़ बादशाह ने कह दिया "अबदुल्ला ख़ाँ, हम लोगों का कोई छिपा दुशमन पैदा हुआ है। तुमही उसका कोई बन्दोबस्त करो, मेरे किए क्या होना है, जैसा मुझे कहोगे मैं करने को बाहर नहीं हूं " ।

वज़ीर—"यही तो मैं भी सोच रहा हूं, तो इस बारे में आप कुछ नहीं जानते ?"

बादशाह वज़ीर का हाथ थामके कुछ उदास से होके बोले—"तुमसे मेरी कौनसी बात छिपी हुई है ? तुमने और तुम्हारे भाई हुसेन अली ख़ां ने मुझे मुसीबत के वक्त जो सहारा दिया था, लड़ाई में मेरी तरफ़ से हथियार थाम्हा था, तुम्हींने मुझे तख्त पर बैठाया, क्या वे बातें मैं भूलगया हूं कि तुम्हारे साथ मैं खुटाई करूंगा ? जो रतनचन्द पर शायद नाख़ुश भी होऊं तो तुम्हें कहता। क्या मेरे कहने का तुम्हें एतबार नहीं होता ?"

वज़ीर ने कहा—माफ़ कीजिए, इस वक्त तबियत निहायत परेशानी में है। आप बेफ़िक्र रहें, मैं इस बात का जल्द कुछ निबटेरा करता हूं"।

वज़ीर ने घर लौट कर राजा रतनचन्द की खोज में चारों ओर सन्धानियों को भेजा। वज़ीर के सन्धानिए दूत यों तो सभी ठौर और सब मौक़ों पर लगे ही रहा करते थे, पर इस समय राजा की खोज का उनपर अधिक ज़ोर डाला गया। क़िले के आस पास जिनकी तैनाती थी उन्होंने आके कहा कि न तो कोई पालकी गढ़ के अन्दर गई और न बादशाह का कोई सिपाही बाहर आया था। यह सुन वज़ीर समझ गया कि इस अनहोने साहस के काम में बादशाह का कोई लैालेस नहीं है। फिर रतनचन्द को किसने और क्यों क़ैद किया ? उसके जी में तभी खुटका हो गया था जब परवाने पर अंगूठी के छाप की बात सुनी थी। वज़ीर के जी में चट उस तीखी दृष्टिवाले अपरिचित मनुष्य का ध्यान आगया। उसके जी में भांति भांति की बातें उठने लगीं।

दिल्ली नगर भर में कोई ऐसी छोटी बड़ी प्रसिद्ध और छिपी जगह न थी जहां वज़ीर के गुप्त चर न रहा करते हों। पर राजा रतनचन्द को कौन कहां और क्यों ले गया इसकी किसीको भी थाह न लगी।

सन्ध्या के समय अपने मकान में वज़ीर बांए हाथ पर सिर झुकाए उदास बैठे सोच रहे हैं,

सामने चुप चाप दो चार मुसाहेब भी बैठे हैं चारों ओर उदासी का सन्नाटा फैला हुआ है। एका एक वज़ीर जहां बैठे थे, किसीकी परछाहीं दिवाल पर दिखाई दी, वज़ीर ने सिर उठा दरवाज़े की ओर झुक के देखा।

अग्निशिखा निकलती आंखें और पीले बाल वाला वही अनजान असाधारण मनुष्य उन्हें देख पड़ा। उसे देखतेही वज़ीर चौंक कर उछल के खड़े हो चिल्लाके कहने लगे "पकड़ो, पकड़ो, देखो, ख़बरदार भागने न पावे"।

उसने कहा—"वज़ीर साहेब! जो मुझे भागना ही होता तो मैं आपके घर के अन्दर क्यों आता? अब तक सारा शहर तो ढूंढ फिरे, पर आपके आदमियों को कहीं भी पता न लगा, तब मैं आपही आपके सामने आ गया। आप इतना चीख़ क्यों रहे हैं?"

अन्त की बात सुनतेही वज़ीर के जीमें पिछले सब अपमान सैागुने होकर भभक उठे। मारे क्रोध के सारा बदन कांपने लगा। मुसाहेबों ने कहा—"देखो इसे बिना बांधे न छोड़ना, यह हमलोगों का पूरा बैरी है। इसे बांध के पांच सौ बेंत इसके पांवों में मार चिमटे से सारे शरीर की बोटी बोटी चीथ डालो और उन्हें मरघट के भूखे चील और गीधों के आगे डाल दो। जैसा इसने किया है वैसा ही बदला होना चाहिए"।

यह सुन वह मनुष्य सिर उठाकर हँसा। हँसी सुन वज़ीर कांप उठे और उसके साथियों ने चाहा कि उस अभिमानी धृष्ट को बांधें।

उस मनुष्य के हाथ में एक पतली सी गुप्ती थी, चट उसने उसके अन्दर से एक पतली लपलपाती तलवार निकाल आस पास वालों के अङ्ग में छुला दी। ज़रासा छूने में चोट लगने की कोई सम्भावना तो न थी, पर उसके छूजाने ही से चिल्लाके सबके सब मूर्छित हो पड़े।

यह देख वज़ीर बहुत ही डरा और पिछले अपमान उसके नस नस में बिन्धने लगे।

उसके बगल में एक गुप्त द्वार था जिसे ज़रा सा खोल वज़ीर ने ताली बजाई। ताली सुनते ही बहुत से खोजे और नौकर चट दूसरे द्वार से अन्दर आ घुसे। वज़ीर ने उँगली का संकेत कर उन से कहा "चट इसे पकड़ो और जो ताक़त दिखावे तो मार डालना"।

वज़ीर की बात समाप्त भी न होने पाई थी कि वह अपने हाथ वाली तलवार तेज़ी से चारों ओर फेरने लगा। किसीके अङ्ग से न लगी, केवल अधर में घूम रही थी। ऊपर नीचे दाहिने बायें चारों ओर उसमें से आग बरसने लगी, शुभ्र, तीव्र झुलसानेवाली ज्वाला, तलवार से चारों ओर फैल गई। सारे दालान में मानो आग की नदी सी बहने लगी और झलझलाती लहरें उसमें लहराने लगीं, पर उसी अग्निपुञ्ज में वह बलवान अपने पीले बाल बिखराए अटल खड़ा रहा, मानो सदेह अग्नि देव का वहां आविर्भाव हो गया था।

नौकर लोग भौचक से खड़े तमाशा देख रहे थे। कुछ देर तक तो वज़ीर भी चुप रहे, अन्त बोले-"अरे यह सब इन्द्रजाल का खेल है, डरो मत चट इसे पकड़ो, पकड़ो, नहीं तो तुम्हारी आंखों में धूल डाल लोप हो जायगा"।

उन नौकरों में से एक साहसी आगे तो बढ़ा, पर बदन में आग की लपट लगते ही चिल्ला के धड़ से ज़मीन पर गिर पड़ा, उसे देख और किसीका आगे बढ़ने का साहस न हुआ।

उस अनजान ने वज़ीर से कहा "अबदुल्ला खाँ, ख़बरदार! दो बेर तुम देख चुके हो कि मैं तुम्हें कोई हक़ीकत नहीं समझता, अगर चाहूं तो देखते देखते तुम्हे और तुम्हारे इस घर को भस्म करदूं; बस, अब मेरे मुह न हो, दो बेर मैंने छोड़ दिया, अबकी तीसरी बेर न छोड़ूंगा"।

अपरिचित ने आपही जिस किवाड़ को बन्द किया था, उसे खोल वह बाहर निकल गया। उस के निकलते ही घर में की आग बुझ गई। साथही घर में की रोशनी भी बुझ गई और सारे घर में अँधेरा छागया।

[क्रमशः

बुँदेलखण्ड पर्य्यटन



बेतवा के तीर पर बुन्देले सरदारें के समाधिभवन।

ओड़छा

कविकुल-कमल-दिवाकर महात्मा सूरदास जो ने सत्य कहा है—"सब दिन होत न एक समान"। निस्सन्देह यह वाक्य ऐसा सारगर्भित है कि इसे जितना ही सोचिए उतना यह गूढ़ प्रतीत होता है और इतिहासानुरागी लोगों के लिये तो यह वाक्य ऐसा उपयोगी है कि यदि वह इसे स्वर्णाक्षरों से लिखकर रात्रिदिवस अपने सामने भी लटकाए रहें तौभो अनुचित न होगा। दम्भी पुरुषों के सम्मुख तो यह वाक्य घन घोर नाद से पढ़े जाने के योग्य हो है। जनवरी मास में बुँदेलखण्ड के अन्तर्गत पर्य्यटन करता हुआ जब मैं झांसो में पहुंचा और झांसो के दुर्गम दुर्ग, कोट तथा महाराणी लक्ष्मीबाई के राज्यभवन पर जब मेरी दृष्टि पड़ी, नगर में हिन्दूलोगों के प्राचीन नगरों के ढब के हाट, बाट, मन्दिर, गृह, जिनके द्वारों पर चित्रकारी के गज, अश्व, सेना, देवतादि के चित्र नाना रङ्गों के जब मैंने देखे, उसी समय अनायास, फ़र्यन, फाहयान, ह्यन्थशान लिखित भारतवर्षीय नगरों का चित्र आंखों के सम्मुख आ खड़ा हुआ और भारतवर्ष की उस सुख की दशा को वर्तमान दीन दशा से मि[illegible]र चित्त बिकल हो उठा और कण्ठावरोधन होने को ही था कि पुनः महात्मा सूरदास ने मेरा प्रबोध किया, और 'सब दिन जात न एक समान' इस वाक्य को स्मरण कर जगत को परिवर्तनशील जान चित्त ने धैर्य धारण किया। पुनः कई दिन तक मैं झांसी नगर के प्राचीन चिन्हों का अनुसन्धान करता रहा। इसी अवसर पर एक दिवस मैं नगर के कोट के एक द्वार से निकला जो "ओड़छा द्वार" करके प्रसिद्ध है। इस द्वार को देखते हो मुझे अकस्मात् कवि-कुल-कमल-दिवाकर सूरदास जी के सहयोगी सहित्य-गगन के शोभावर्द्धक नक्षत्र कवीन्द्र केशवदास जी के, तथा उनके प्रतिपालक तथा प्रचण्ड मुगल सम्राट कुटिल-नीत्यवलम्बी अकबर के दर्प-दमनकारी बुँदेलवंशावतंश बीरशिरोमणि महाराज बीरसिंहदेव जी के अलौकिक चरित्रों को रङ्गभूमि का स्मरण हो आया, सब ओर से हट कर चित्त उसी ओर आकर्षित हो गया। यद्यपि मुझे कई एक आवश्यकीय कार्यों के कारण झांसी से बाहर जाने का अवकाश न था, परन्तु

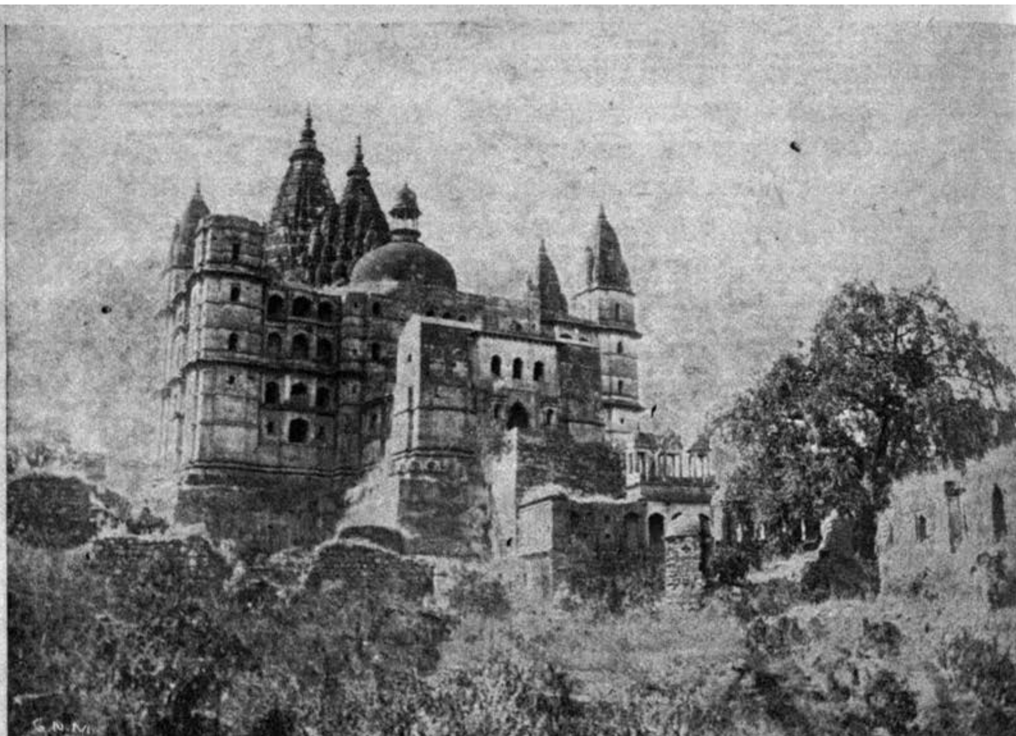
"मत हट परो न सुनहि सिखावा" की दशा हुई, सब काम छोड़ सबके बर्जने पर भी मैं गाड़ी मँगा दूसरे दिवस प्रातःकाल इन प्रातस्मरणीय महानुभावों की जन्मभूमि देखने को चल दिया। प्रगट हो कि ग्रोड़छा झांसी से ग्राठ मील के ग्रन्तर पर है, मार्ग ग्रत्यन्त दुर्गम है, तथापि ग्रोड़छाधिपति महाराज टीकमगढ़, ने जो बुँदेलखण्डीय राजमण्डली के ग्रग्रणी हैं, उसे ऐसा सुधरवा रक्खा है कि गाड़ी ग्रादि के जाने में कुछ कष्ट नहीं होता। पार्वतीय मार्ग होने से बहुधा मार्ग ऊंचा नीचा है, जो मुझे संसार के सम्पत्ति बिपत्ति की ठौर ठौर पर स्मरण दिलाता था। मार्ग के दोनों ग्रोर सघन बनवृक्ष प्रहरीरूप में खड़े थे, उनपर खगवृन्दों का कलरव एक ग्रपूर्व ग्रानन्द का संचार कर रहा था। पाठकवृन्द, कदाचित् ग्रापके नगरवासी होने से बनवर्णन ऊभट प्रतीत होता होगा ग्रैार ग्राप मुख्यस्थान के वृत्तान्त सुनने के लिये ग्रधिक उत्सुक होंगे, ग्रतः हम मार्ग का कुछ भी वृत्तान्त न कह मुख्यस्थान पर पहुंचते हैं। भारतवर्षीय इतिहास में जबसे यवनगण के सङ्कटमय चरणों के इस देश में पड़ने का वर्णन पाया जाता है, तबसे इस देश के दो प्रान्तों के राजपूत वीरों को हम विशेषतः रणक्षेत्र में पाते हैं; एक तो राजपुताना, दूसरे बुँदेलखण्ड। ग्राज का हमारा ग्रालोच्य विषय बुँदेलखण्ड का एक नगर है। इसलिये राजपूताने का वर्णन न कर हम कुछ संक्षेप सा वर्णन बुँदेल राजपूतों के वंश का करदेना उचित समझते हैं।

सीमा—भारतवर्ष के मध्यप्रदेश में राजपूताने की भांति एक वीरक्षेत्र यह बुँदेलखण्ड है। इसके उत्तर में यमुना नदी, पूर्व में रींवां का राज्य, दक्षिण में नर्मदा सिञ्चित प्रदेश ग्रैार पश्चिम में ग्वालियर का राज्य है।

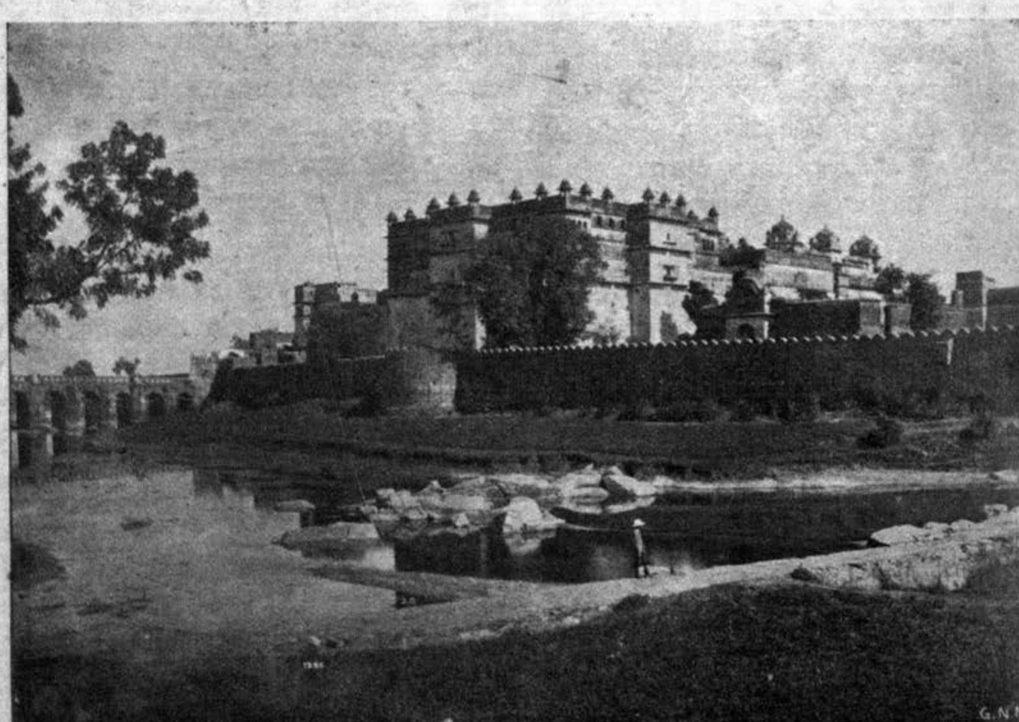
नाम पड़ने का कारण—विन्ध्याचल की नाना शाखाएं इस देश के ग्रन्तर प्रविष्ट हैं, ग्रतः यह पार्वतीय देश उसी सम्बन्ध से विन्ध्यखण्ड, ग्रथवा विन्ध्येलखण्ड कहलाया ग्रैार कालान्तर में इस शब्द का ग्रपभ्रंश हो 'देश बुन्देलखण्ड कहलाने लगा*।

इतिहास—यों तो कविकुल-गुरु महर्षि वाल्मीकि जी की रामायण में इसके चित्रकूटादि स्थानों का वर्णन मिलता है, परन्तु महाभारत में चेदि (चन्देरी) नामक राज्यसम्बन्ध में इस देश के राज्य का सविस्तर इतिहास पाया जाता है। युगान्तर का इतिहास होने से हमें यहां उसके वर्णन की ग्रावश्यकता प्रतीत नहीं होती ग्रैार हम कवि चन्द लिखित महोबा खण्ड की साक्षी पर चन्देल वंश का, जिनकी प्रथम राजधानी कालिञ्जर थी, जिसका दुर्गम दुर्ग ग्रद्यापि उनके प्रतापशील होने की सुधि दिलाता है ग्रैार द्वितीय राजधानी खज्जूरपुर, जिसके ग्रद्वितीय प्राचीर मठ मन्दिर तड़ागादि ग्रब तक उनकी महानता के सूचक क्षत्रपुर राज्यान्तर्गत खड़े हैं, ग्रैार तृतीय राजधानी महोबा थी, जिसके प्रबल वीर ग्राल्हा, ऊदन, मलखान ग्रादि ने एक बार समस्त भारत में चन्देल वंश की विजय का डङ्का पीट दिल्लीश्वर पृथ्वीराज तक को थर्रा दिया था ग्रैार ग्रपने बालपन में काबुल तक को विजय कर लिया था, जिनके ग्राश्चर्यदायक विशाल चिन्ह ग्रब तक समस्त भारतवर्ष में ग्रैार विशेषतः महोबा के सन्निकट देशों में फैले हुए हैं, सविस्तर वर्णन करने का ग्रलग सङ्कल्प कर चुके हैं, इसलिये यहां पर केवल इतना ही लिखते हैं कि इस प्रचण्ड वंश के भाग्य का सूर्य भी, सन् ११९७ ई० के लगभग दिल्लीश्वर पृथ्वीराज के भाग्यभानु के साथ ही साथ, यवनदीप के प्रज्वलित होने के समय, ग्रस्ताचल को प्रस्थान कर गया ग्रैार तदुपरान्त

* किसी किसी का यह पैाराणिक मत है कि इस वंश के ग्रादि मूल राजा वीर ने ऊग्रतप कर श्री विंध्यवासिनी को ग्रपना शीश चढ़ाया था। भगवती उनसे ऐसी प्रसन्न हुईं कि उन्हें पुनः जीवित कर दिया। इतना ही नहीं, किन्तु शीश चढ़ाते में जो रक्त विंदु गिरे थे उनसे भी वीर उत्पन्न कर दिए ग्रैार वह राजा के सहायक हुए ग्रैार बुन्दोत्पन्न होने से बुन्देले कहलाए।



ओड़छा का बड़ा मन्दिर।



वेतवा के द्वीप में गढ़ और राजभवन।

बीर बुन्देलवंशीय राजपूतों के शासन का इस देश में प्रादुर्भाव हुआ। जब चन्देलचन्द्र के बियोग में बुँदेल मुख-कुमुदनी यवन-भाग्य-भास्कर को देख मुरझा रही थी, इस देश का श्रृङ्खलाबद्ध राज्य नष्टप्राय हो गांव गांव के निराले ठाकुर होते जाते थे, उसी समय शाकम्भरी नरेश पृथ्वीराज को छल से मारने-हारे क्रूर शहाबुद्दीन ग़ोरी के सेनानायक, पृथ्वीराज के राज्य के प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशों में फैल गए और जिस लोरक खत्री ने आर्यवंश की अहितचिन्ता कर कई बार शहाबुद्दीन को पृथ्वीराज के बन्धन से छुड़ा और अन्त में पृथ्वीराज की वैसी ही दशा में सहायता न कर, शहाबुद्दीन के हाथ उसका शिरोच्छेदन होने दिया, और इस प्रकार स्वजाति-घातक पाप का दोष जिसके शिर पर छा रहा था उसीकी सन्तान महोवा राज्य की ओर यवन-शासन होते ही आई और राज्य सीमा पर जालौन प्रान्त के कोंच परगने के मुहौनी नामक ग्राम में अपने राज की राजधानी नियत कर रहने लगी।

धन्य भारत! तेरा जल वायु अद्भुत पदार्थ है, कोई कैसा ही क्रूर कुटिल प्रकृतिवाला तेरे अन्तर्गत क्यों न आवे, जहां पतितपावनी भगवती जन्हुनन्दिनी के जलबिन्दुओं का उसने आचमन किया और जहां त्रैलोक्य विभूति को तृण गिनने और ब्रम्हानन्दामृत को पान करनेहारे हिमश्रिङ्गा-श्रित ऋिषियों के पद स्पृष्ट वायु का उसे स्पर्श हुआ, तहां उसके माने विकार, जन्म जन्मान्तर के पाप, क्षणमात्र में दूर हो उसमें भी साधुत्व आही जाता है। "खल सुधरहिं सत्संगत पाई—पारस परस कुधातु सहाई" का न्याय होताही है।

लोरक के सन्तानों की भी यही दशा हुई। भारत-वर्ष के जल वायु ने उन्हें यहां के पवित्र गुणों से अलङ्कृत कर दिया, सदाचार, सद्व्यवहार, बंधु-भाव, सुशीलता और सुजनता का सञ्चार उनके हृदय में हो गया, मुहौनी गद्दी के एक वृद्ध महाराज निस्सन्तान थे उनके जीवनकाल की संध्या होने ही को थी, कि इतने में काशी के प्रसिद्ध गहिरवार-बंश-भूषण राजा कर्ण नामक किसी कारण अपने पूर्वजों की राजगद्दी काशी छोड़ मुहौनी आए; निस्सन्तान मुहौनी राज्याधीश ने बड़े प्यार से उनका सत्कार किया और उनको अपना पाहुना बनाया। कुछ कालोपरन्त दोनों में घनिष्ट प्रेम हो गया और मुहौनीराज महाराज कर्ण के गुणों से ऐसे मोहित हो गए कि अपना समस्त राज आगन्तुक को सौंप आप सुरपुर यात्रा कर गए। यही राजा कर्ण इस बुँदेल वंश के आदि मूल हैं। राजा कर्ण और उनके पुत्र अर्जुनपाल जो मुहौनी में राज करते रहे और अपने राज का विस्तार करते गए; परन्तु अर्जुनपाल जी के पुत्र राजा सहन-पाल ने प्रवल खंगार जात को परास्त कर उनकी राजधानी गढ़ कूंडार को विजय कर मुहौनी से राजधानी हटा गढ़ कुंडार को अपनी राजधानी बनाया। राजा सहनपाल, राजा सहजइन्द्र, राजा नौनिध, राजा प्रथु, राजा सूर, राजा रामचन्द्र, राजा मेदिनीमल, राजा अर्जुन, राजा रायअनूप, राजा मलखान, राजा प्रतापरुद्र तक यहां राज्य करते रहे, परन्तु महाराज रुद्ररुद्र ने गढ़ कुंडार से राजधानी हटा एक सिद्ध जी के आज्ञा-नुकूल वेत्रवती के तट पर ओड़छा बसाया। यही ओड़छा नगर आज हमारा आलोच्य विषय है।

पाठक महानुभावो! आप प्रथम टुक प्रकृति का वर्णन सुन लीजिए, कि यहां वह किस रुप में विस्तृत है। नगर के चतुर्दिक पर्वतों की छोटी छोटी श्रृङ्गें फैली हुई हैं। इनपर पलाश, खैर, बरगद, पीपल के बन के बन उगे खड़े हैं, इन्हीके बीच बीच कहीं शिव मन्दिर, कहीं फूटे कोट, कहीं तिद्वारी दृष्टि आती हैं। जंगली जन्तु भी बहुतायत से इन्हीं बनों में रहते हैं। पर्वतों के बीच बीच में बड़े बड़े नाले हैं जो बनबूटियों से भरे पड़े हैं। बंबई, दोनामरुआ और तुलसी के वृक्ष समभूमि पर सहस्रों देख पड़ते हैं। निर्मल वेत्रवती पर्वतों को बिदार कर बहती है और पत्थरों की चट्टानों से समभूमि पर, जो स्वयं पथरीली है, गिरती है,

जिससे एक विशेष आनन्ददायक वाद्यनाद मीलों से कर्णकुहर में प्रवेश करता है और जलकण उड़ उड़ कर मुक्ताहार की छवि दिखाते और रवि-किरण के संयोग से सैकड़ों इन्द्रधनुष बनाते हैं। नदी के थाह में नाना रङ्ग के प्रस्तरों के छोटे छोटे टुकड़े पड़े रहते हैं, जिनपर बेग से बहती हुई धारा नवरत्नों की चादर पर बहती हुई जलधारा की छटा दिखाती है। नदी के उभय तटों पर ऊंची पथरीली भूमि है और इसीपर नगर बसा था जिसके खंडहर अद्यापि कई मील तक विस्तृत हैं। और उभय तटों पर देवालयों की पांतें, कूप, बावली, राजाओं की समाधिओं पर के मन्दिर देख पड़ते हैं जिनका विशेष वर्णन हम आगे चल कर करेंगे। जब वेत्रवती ओड़छे के मध्य में पहुंचती है तब वह दो धारों में बिभाजित हो जाती है और मील भर के लगभग लंबा एक अंडाकृत टापू बीच में रहजाता है। पाठक महानुभावो! आप इस टापू को भूल मत जाना। आगे चल कर आप इस टापू पर फिर आवेंगे। नगर के चतुर्दिक पहाड़ी पत्थरों की टोलें चुन चुन कर कोट बनाया गया था और उसमें बड़े बड़े ऊंचे द्वार छोड़ दिए गए थे। ये टोलें चूने से जोड़ी नहीं गई हैं, केवल एक दूसरे पर चुन दीगई हैं। इनके दोनों ओर सघन वृक्ष जम आए हैं और उनकी जड़ों में फंसकर पत्थरों की टोलें ऐसी दृढ़ होगई हैं कि टाले नहीं टल सकतीं और इसी कारण स्वाभाविक पर्वतश्रेणी प्रतीत होती हैं, और इस ऊजड़ दशा में भी हमें वह स्थान रम्य जान पड़ता है, माने मनुष्यों के अभाव में स्वयं प्रकृति देवी वहां पथिकों का सत्कार करती हों। इसी रम्य भूमि पर महाराज रणरुद्र जी ने ओड़छा बसाया था।

किसी कवि ने सत्य कहा है "गुण ना हिरानो गुणग्राहक हिरानो है"। राजा गुणग्राहक चाहिए, फिर गुणियों की त्रुटि कहां। राजा रणरुद्र की गुण-ग्राहकता से आन की आन में सैकड़ों गुणी, पण्डित, विद्वान, नीतिज्ञ ओड़छे में आन बसे; सब का राजदर्बार से सत्कार होने लगा। महाराज रणरुद्र के पश्चात्, महाराज भारतचन्द्र, और तब हरिचन्द्र राजा हुए। इन सपूतों ने अपने पूर्वजों के राज्य को और भी बढ़ाया। कृतघ्न शेरशाह सूर ने पूर्व उपकारों को भूल महाराज हरिचन्द्र पर आक्रमण किया। परन्तु अन्त में वह कायर इनकी कृपाण का लेख अपने भुजा पर लिखा रक्तप्लावित आहत हो कायरों की भांति रण से भाग गया। ओड़छे का विशाल चतुर्भुज जो का मन्दिर इन्हीं महाराज का कीर्तिस्तम्भ है। यह स्वर्णकलशमय मन्दिर तीन शिखरों में विभाजित है। एक तो पर्वत के समान ऊंची बैठक पर यह मन्दिर बनवाया गया है, दूसरे मन्दिर की ऊंचाई भी एक पहाड़ के समान ही है। इसका विस्तृत सभामण्डप वृन्दावन के गोविन्ददेव जो के मन्दिर से किसी अंश में न्यून नहीं हैं। सभा-मण्डप में वायु तथा उजेले के लिये द्वार लगे हैं और एक छोर पर चतुर्भुज जी की मूर्ति स्थापित है। सभामण्डप के किसी द्वार पर खड़े हो जाइए, उस ओर के नगर का सब विभाग हथेली पर की वस्तु की भांति दृष्टिगोचर होगा। और छत पर से तो समस्त नगर ही देख पड़ता है। यह मन्दिर एक छोटे क़िले के समान है और ऐसा दृढ़ है कि कदाचित तोपों की मार भी वह सरलता से सहन कर सके। भूल भुलैयों की भांति इसको छत पर द्वार कटे हैं। अपने ढङ्ग का यह मन्दिर ऐसा अनूठा है कि कदाचित् इस बुँदेलखण्ड में कोई ऐसा मन्दिर न निकले। परन्तु किन्हीं विशेष कारणों वश यह मन्दिर अपूर्ण सा रहा और महाराज स्वर्गयात्रा कर गए और राज्य-सिंहासन पर यशस्वी महाराज मधुकरसाह राजा हुए। मुगलवंश का भाग्य इस समय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान चमचमा रहा था। शुद्ध स्वार्थी लोभीजन दिल्लीश्वर की तुलना "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" कह कर परमेश्वर से तुलना करने लगे थे और अपनी कुटिल नीति से अकबर भारतवर्ष के हिन्दू राजामात्र से अपना सम्बन्ध जोड़ उन्हें धोखा दे मुसलमान बनाने का प्रबन्ध

कर रहा था, कि इतने में महाराज मधुकुरसाह का अर्कोदय हो उठा। उनकी विमल कीर्ति मुगल सम्राट का हृदय शालने लगी। उसके यश का खद्योत इनके यशार्क के सम्मुख छविहीन हो गया और उसके यश की जर्जरित नौका इनके अगम कीर्तिसागर में डूबती जान पड़ी। तब दुराग्राही मुगल सम्राट ने ईर्षावश इन्हें भी राजपुताने के और राजपूतवंशों के समान अपने दासत्व-शृङ्खला में बांधने के नाना उपाय रचे, परन्तु यहां तो "भूख मरै दिन सात लौं सिंह घास नहिं खाय" की दशा थी। अकबर ने सब प्रयोगों के निष्फल होने पर अपने पुत्र मुराद को बलाध्यक्ष कर इनपर सेना सन्धान की। परन्तु वह सेना महाराज के कृपाण के प्रज्वलित दीपज्योति की पतङ्ग हुई। मुराद रण से भाग गया, अन्त में अकबर ने हार मानकर इनसे सन्धि करली। कवीन्द्र केशवदास जी के पितामह कृष्णदत्त जी मिश्र, जो प्रख्यात प्रबोध चन्द्रोदय नामक रूपक के रचयिता हैं, इन्हीं महाराज के राजपण्डित थे। इन्हीं घटनाओं के स्मरणार्थ कवीन्द्र केशवदास जी ने निम्नलिखित वाक्य लिखे हैं—

"देव अदेवन को चरणोदक बोधो सबै कलि के कुलमानी।"
"दारिद दुःख बहाय दए जिन दीरघ दान कृपान के पानी॥"
"लोकहि* में परलोक रच्यो अरि देह विदहन की रजधानी।"
"राज मधूकरसाह सों और न रानिन जैसी गणेशदे रानी†॥"
"बापि बघेले को राजसुखायगो खोपरि क्षुद्र पठानि अठानी।"
"केशव ताल तरङ्गनि सूख गई सिगरी रजधानी सुत्रानी॥"
"शाह‡ अकब्बर अर्क उदय मिटि मेघ महीपाति की रजधानी"
"उजागर सागर श्री मधुसाह के तेग चढ्यो दिनही दिन पानी"

दोऊ दीन बखानही जग में जाकी कृत्ति।
कृष्णदत्त§ मिश्रहिं दई, जिन पुराण की वृत्ति॥

* से अभिप्राय रघुनाथ जी के मन्दिर निर्माण करने का है।
† यह राजमहिषी थीं। यही रघुनाथ जी की मूर्ति लाई थीं।
‡ इस पद में मुगल सम्राट की सेना के हारने का इङ्गित है।
§ यही कृष्णदत्त मिश्र महाराज के राजपण्डित थे और केशवदास जी के पितामह थे।

इन्हीं महानुभाव ने प्रख्यात रघुनाथ जी के मन्दिर के लिये अपना राज्यभवन दे दिया और नौचौकिया फूलबाग आदि निर्माण कराया, जिसका विशेष वर्णन हम आगे चलकर राज्यस्थानों के चिन्हों के साथ करेंगे।

इनका और अकबर का यहां तक घनिष्ट सम्बन्ध बढ़ता गया और अकबर इनका यहां तक कृपाकांक्षी रहा कि उसने इनके पुत्र महाराज रत्नसेन के सिर पर अपने हाथ से पगड़ी बाँधी और इनके ज्येष्ठ पुत्र महाराज रामसाह की सहायता ले दक्षिण विजय किया। महाराज के स्वर्गवासी होने पर वीरकेशरी महाराज वीरसिंह देव राज्याधिकारी हुए। औदार्य, निच्छलता और शौर्य इन्हीं के भाग में आ पड़ा था। अकबर के आचरणों से इन्हें स्वाभाविक घृणा थी। उसके स्त्रियों का बाज़ार लगवा कर वहां से महिलागणों को भटकवाकर उनके धर्म-नाश करने और व्यर्थ राजपूत राजाओं को अपनी बेटियां यवनों के घर ब्याहने के लिये सताने आदि की कार्रवाइयों को सुन सुन इनकी क्रोधाग्नि भड़क उठा करती थी। यह ऐसा अवसर ढूंढ़ा ही करते थे कि जिससे अकबर किसी प्रकार इनसे रण रोपै और यह अपने हाथ से रणभूमि में उसका दर्प दमन करें। होते होते ऐसा अवसर आन हो पड़ा। युवराज सलीम और उसके पिता अकबर के परस्पर वैमनस्य रहा करता था, क्योंकि अकबर तो अपने मन्त्रियों के पैरों चलता था, विशेषतः अबुल फ़ज़्ल के। और अबुल फ़ज़्ल यह चाहा करता था कि अकबर के पश्चात् किसी ऐसे को बादशाह बनावे जो उसके हाथ की कठपुतली हो। सलीम अपने पैरों चलनेहारा था, इसी कारण वह अबुल फ़ज़ल को खटकता था। अबुल फ़ज़ल फोड़ तोड़ के बल से अकबर को सलीम से लड़ाता रहता था। सलीम ने अपना पक्ष पिता की दृष्टि में निर्बल पाकर किसी बड़े तथा बलवान का आश्रय ढूंढ़ना चाहा और उसकी दृष्टि में वृत वीर महाराज वीरसिंह देव ही "निर्बल को

बलराम" देख पड़े। सलीम आकर महाराज का पाहुना हुआ और उसने अपना सब वृत्तान्त कहा। महाराज ने उसे सहायता देने का सङ्कल्प किया और जब गोलकुण्डे से अबुल फ़ज़ल लौटकर आगरे आ रहा था, तब ग्वालियर के निकट आन्तरी की घाटी में इन्होंने उससे रण रोपा और अपने हाथ से अकबर के एक मात्र प्यारे मन्त्री का शिर काटकर सलीम के पास प्रयाग भेजदिया और अकबर को रण रोपने के लिये उत्तेजित करना चाहा। परन्तु अकबर इतने पर भी इनके सम्मुख रण रोपने का सहास न कर सका और रो रो कर अबुल फ़ज़ल के शोक में अपना जीवन घटाता रहा और अन्त में अपने बुढ़ापे के दो वर्षों को दुख से काट मर गया। ओड़छे का राज्य तथा बुन्देल कुल के भाग्य का भानु इस समय पूर्ण उन्नति पर था। भारतवर्ष भर में उसकी प्रख्याति हो रही थी। राजसभा सर्वाङ्ग पूर्ण थी। महाराज वीरसिंह देव को महाराज इन्द्रजीत से सहोदर मिले थे, जिनका चातुर्य्य संसार भर में प्रगट था। महाराज को सावंत विक्रमसिंह, अर्जुनसिंह ऐसे स्वामिभक्त कर्मचारी और रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, विज्ञान गीता ऐसे ग्रन्थों के रचयिता कवीन्द्र केशवदास से कवि और प्रवीणराय, सत्यराय, रङ्गराय सदृश काव्यकलासम्पन्न गान तथा वाद्य-विद्या-पारङ्गत गायक मिले थे। ओड़छाधीश की जय देश देशान्तर में बोली जाती थी। ओड़छे के इन्हीं प्रतापपुञ्ज दिनों का वर्णन केशवदास ने किया है। यथा—

दोहा

"केशव तुङ्गारण्य है नदी बेतवै तीर।"
"नगर ओड़छो बहु बसैं पण्डित मण्डित भीर॥"

कवित्त

"ओड़छे तीर तरङ्गनि बेतवै ताहि तरैं रिपु केशव को है।
अर्जुन बाहु, प्रवाहु प्रबोधित रैन ज्यों राजन की रज मोहै॥
ज्योति जगै यमुना सी लगै युगलोचन लागत पाप बिमोहै।
सूरसुता शुभ सङ्गम तुङ्ग तरङ्ग तरङ्गति गङ्ग सी सोहै॥

दोहा

विदित ओड़छे नगर को राजा मधुकुर साह।
गहिरवार काशी सरव कुलमंडन यश जाह॥
वीरसिंह नृप की भुजा* यद्यपि केशव तूल।
एक शाह† को फूल सम एक शाह‡ को शूल॥

कवित्त

पवन ज्यों पुञ्जपंवार उड़ायगो तोमर मूलक तूल उड़ाये।
सिंह ज्यों बाघ ज्यों कच्छपवाहु हत्यो गज ज्यों गजराज ढहाये।
केशवदास प्रकाश अगस्त्य ज्यों शेष अशेष समुद्र सुखाये।
वीर नरेश के खर्ग खगेश गुमान के त्रिक्रम व्याल नसाये॥

दोहा

द्विजन§ दये सुखदान दिन दान दये निहकाम।
अभयदान देत न खलन परतिय दृष्ठ समान॥
भूषण सूरज बंश को दूषण कलि को जान।
दासजो कहिये विप्र को सबही को प्रभु मान॥
कुल बल विक्रम दान बस गुनगन गनत अशेष।
चतुर पंचमुख पट सहस कहि न जाय सविशेष॥

कवित्त

केशवदास राजा वीरसिंहजू के नामही ते
अरिगज राजन के मद मुरझात हैं।
सजल जलद जैसे दूर से विलोकियत
पर दल दल चल दल कैसे पात हैं॥
भैरौं कैसे भूत भट देखतहि प्रतिभट
घट घट देखे बल विक्रम विलात हैं।
पीरी पीरी देखत पताका होत पीर मुख
कारी कारी ढालैं लखि कारे ह्वै ह्वै जात हैं॥

ऐसी उन्नति के दिनों में, पाठक महानुभाव, हम आपको एक बार उस टापू पर जो तुंगारण्य से आगे हम आपको वेत्रवती की दो धारों के बीच में दिखा

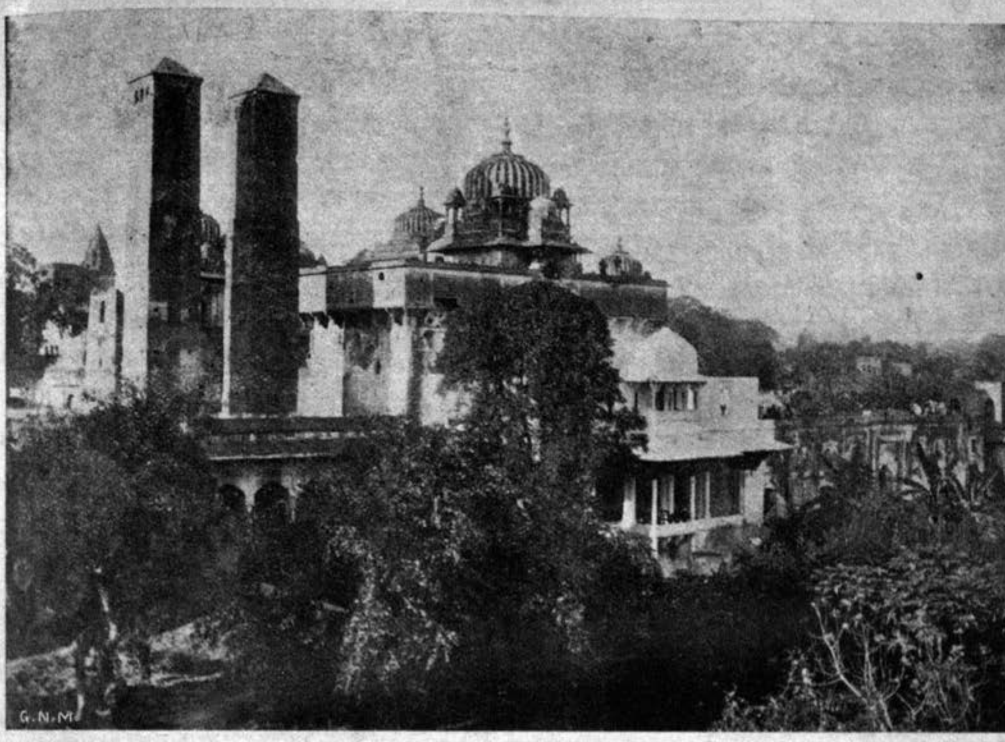
---

* सलीम ने भुजा प्रूज महेन्द्र का पद तथा शाही मरातिब दिया था।

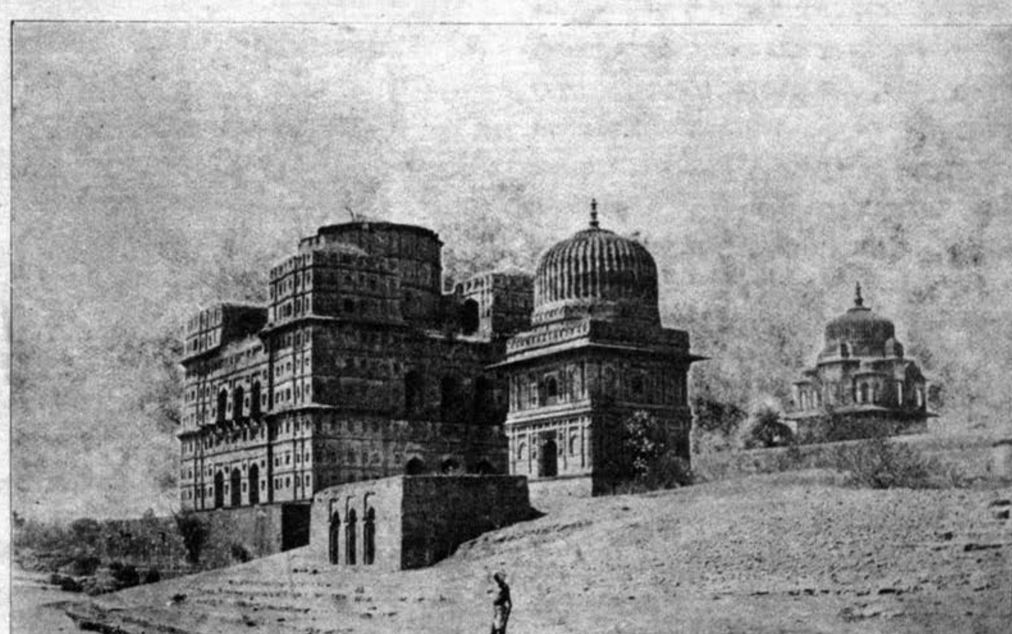
† सलीम।

‡ अकबर।

§ महाराज वीरसिंहदेव ने मथुरा में ८१ इक्यासी मन सोना एक दिन में दान किया था उससे अभिप्राय है।



ओड़छा का सावन भादों महल ।



वीरसिंह देव का समाधिभवन ।

चुके हैं, फिर बुलाया चाहते हैं। यह टापू रघुनाथ जी के मन्दिर के द्वार के सामने एक सरल रेखा में पड़ता है। चतुर्भुज जी के मन्दिर के सभामण्डप में खड़े हो जाइए, इस टापू की एक एक इञ्च भूमि देख पड़ेगी। जनरव है कि एक बार महाराज वीरसिंह देव चतुर्भुज जी के मन्दिर का दर्शन कर सम्मुख के द्वार पर खड़े बेतवा की तरङ्गमाला को देख रहे थे, कि इतने में उनको अनायास एक ग्रामीण युवती देख पड़ी। यह युवती अपने शिर पर एक डलिया लिए दूसरे तट से आरही थी। ज्योंही नदी की एक धार मंझियाकर टापू के तट पर पहुंची, त्योंही वह प्रसवपीड़ा से बिकल होकर शिर से डलिया उतार वहीं बैठ गई और मूर्छित हो गई। थोड़ी देर पीछे वह फिर बिकल हो कर रो उठी। दयालु वीरसिंहदेव यह कौतुक देखही रहे थे। उनको प्रगट हो गया कि यह नवलबाल प्रसव पीड़ा से बिकल है। महाराज ने उसी समय राज मन्दिर में जा परिचारिकाओं को भेजा कि वे इस निस्सहाय युवती की रक्षा करें। परिचारिकाओं ने जाकर उसे सम्हाला और वहीं उसके पुत्र का जन्म हुआ। महाराज वीरसिंह देवने उसे तुरन्त पालकी पर बालक सहित उठवा मंगाया और बड़े प्रेम से उसकी रक्षा और सेवा कराई। अन्त में उसे उसके पति को सौंप दिया और प्रस्थान के समय उसे बहुत सा धन रत्न वस्त्रादि दे अपनी बेटी कह सम्बोधन किया। वह युवती ब्राह्मण वर्ण की थी; सती ब्राह्मणी उनको बहुत आशीर्वचन कहती अपने पति के घर गई। राजा के इस दयासम्पन्न कार्य की ख्याति फैल गई। कहते हैं कि जब महाराज उस ब्राह्मणी को प्रस्थान करा रहे थे, तब एक महात्मा आकर राजा के सम्मुख खड़े हो गए और बोले कि राजन्! तेरा यह पुण्यकार्य तेरे सब पुण्यकार्यों से गुरुतर है; यह टापू सिद्धाश्रम है और तूने भी यहां यह महायज्ञ किया है। यदि तू यहां पर अपना राजमन्दिर तथा कोट बनवावेगा तो तेरा आतङ्क वहां पर बैठ आज्ञा करने से दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जायगा। सिद्धबचन शिर धर कर राजा ने उसी समय वहां राजमन्दिर आदि बनवाना प्रारम्भ कर दिया। कहते हैं कि जब क़िले के लिये टापू में नीव खोदी जारही थी, तब एक मठ भूमि के भीतर देख पड़ा और जब वह खोला गया तो एक और सिद्धजी के दर्शन हुए, जिन्होंने यही आदेश किया कि मेरे मठ को वैसेही बंद करके ऊपर से अपना कोट बनालो। राजा ने वैसाही किया और कुछ काल में कोट बनकर प्रस्तुत हो गया, जिसका सविस्तर वर्णन हम अन्य स्थानों के साथ आगे चलकर करेंगे। महाराज के कोट के भीतर ही और बहुत से कार्यालय बन गए और ओड़छा राजसभा के प्रवीण सभासदों के सुयश की सुवास दूर दूर तक फैलने लगी। महाराज और उनके सहोदर इस सुअवसर और अपने सौभाग्य को परिपूर्ण देख फूले नहीं समाते थे। "संसार परिवर्तन शील है" यह बात महाराज भी भली भांति जानते थे। उन्हें यह भली भांति ज्ञात था कि मध्याह्न के पश्चात् सांझ होती है। शरीरधारी एक न एक दिवस मृत्यु का ग्रास होता ही है। कवीन्द्र केशवदास जी से महाराज ने स्पष्ट शब्दों में एक बार कह ही डाला कि हमारे जीवन की सन्ध्या अब होने का समय निकट आ चला; इसका तो मुझे कुछ शोक नहीं है, परन्तु जब यह ध्यान आता है कि मृत्यु के प्रचण्ड बवण्डर के झोंके से उड़ बालू के कणों की भांति यह मण्डली भी तितर बितर हो जायगी तो आंखों के सम्मुख अन्धकार सा छा जाता है और चित्त शोकाकुल हो उठता है, क्योंकि ऐसा समाज अब जन्मान्तर में भी मिलना दुस्तर प्रतीत होता है। गुरुवर, क्या आपके शास्त्र में कुछ ऐसा उपाय है जिससे यह समाज अधिक काल तक स्थिर रह सके? कवीन्द्र ने उत्तर दिया कि राजन! उपाय तो अवश्य है, परन्तु बहुत दुखप्रद है। समस्त सभा यदि एक बार ही आत्मसमर्पण कर दे तो समाज प्रेतयोनि में एक सहस्र वर्ष तक स्थित रह सकती है। राजा ने उपाय से सहमत हो कृत्य का विधान पूंछा।

कवीन्द्र ने प्रेतयज्ञ* का विधान कहा। राजा ने यज्ञ के लिये आज्ञा दी। तुङ्गारण्य पर वेत्रवती तट के दक्षिण ओर प्रेतयज्ञ के लिये वेदी रची गई और वहीं पर सब सभा प्रेतयज्ञ में आत्मसमर्पण कर भस्मीभूत हुई। मेरे अनुमान में यह ठौर महाराज वीरसिंह देव के समाधिमन्दिर के निकट किसी स्थान पर है,† क्योंकि प्रेतयज्ञ तो तुङ्गारण्य में हुआ; परन्तु ठीक चिन्ह विवादित है। महाराज के भस्मीभूत होते ही ओड़छे के भाग्य ने पुनः पलटा खाया। कालचक्र किसी और ही गति पर घूमने लगा और महात्मा सूरदास जी का वाक्य "सब दिन जात न एक समान" यहां पर फिर चरितार्थ हुआ। जिस वीर केशरी ने अकबर सम प्रबल सम्राट का दर्प दमन किया था, उसके ही निर्बल पुत्र शाहजहां बादशाह के आधीन हो दिल्ली के दर्बार आम के खम्भों से टिक कर विनीत भाव से खड़े रहने लगे। केशवदास, विक्रमसिंह, अर्जुनसिंहादि आमात्यों के ठौर प्रतीतराय सदृश आमात्यों की प्रतीत होने लगी। विहारीदास सम कवि यह कह "जिन दिन देखे वे कुसुम गई सुबीत वहार। अब अलि रही गुलाब की अपति कटीली डार" ओड़छा छोड़ने लगे। पाठक महाशयो! विहारीदास जी के "अपति कटीली डार" वाक्य से ही समझ लीजिए कि इतने ही स्वल्प काल में, अर्थात् पिता से पुत्र तक राज्य आने में, क्या अन्तर हुआ। कवि अपने पिता केशवदास जी के समय में ओड़छा की उपमा गुलाब के लहलहे पुष्पमण्डित डार और अपने समय में अपति कटीली डार से देते हैं, क्योंकि एक और दोहे में वह स्वयं कह चुके हैं "यह आशा अटक्यो रह्यो अलि गुलाब के मूल। ह्वै हैं बहुर वसन्त विच इन डारन वे फूल"। ओड़छे की राजसभा ने यहां तक पलटा खाया कि जो राजबन्धु बन्धुप्रेम में एक दूसरे पर प्राण निछावर करने को प्रस्तुत थे, उन्हींकी गद्दी के अधिकारी अपने सहोदरों को विष देने लगे। राजकुमार हरदेवसिंह जी* को उनके बड़े भाई ने अपनी स्वपत्नी द्वारा विष दिलवाया। इस जघन्य कार्यवश राजवंश से सब सम्बन्धी और सजातीय रुष्ट होगए। जिन वीरों पर राज के महत्व मन्दिर की नीव थी, वह निरुत्साहता रूपी कुदाल से ऐसे पोले पड़े कि राज्य धसकने लगा। सम्बन्धी इधर उधर छितर बितर हो अपने छोटे छोटे राज्य अलग बना बैठे, जिनमें अब तक बुन्देलखण्ड के अन्य राज्यवंश हैं। ओड़छा धीरे धीरे उजड़ने लगा। कोई विशेष ख्याति के कार्य इन सभों में ऐसे नहीं हुए जिनसे इतिहास के पत्र सुभूषित होते, परन्तु तब भी राज ओड़छे में रहा और ओड़छे के राज मन्दिर में दीपक जलते रहे; परन्तु कुछ काल हुआ राजधानी ओड़छा से उठा कर टीकमगढ़ में कर दी गई, ओड़छे के राजमन्दिरों में ताले पड़ गए। जहां रात्रि दिवस राजकर्मचारी, राजकुमार, राजमहिषी, सैनिक, सेवक, दास दासियों के कोलाहल से "निज पराय कछु सुनिये न काना" का वाक्य सत्य होता था, वहां अब चतुर्दिक निस्तब्धता ही निस्तब्धता भीषण रूप में छाई है। धन्य है, कालदेव! तुम्हारे विचित्र कौतुक हैं! शिवधनुष टालने का साहस तो भगवान रामचन्द्र जी ने कर लिया था, परन्तु तुम्हारे चक्र को सम्हालने का साहस त्रैलोक्य में किसी को नहीं है। राजसभा टीकमगढ़ में हो जाने से ओड़छा अब नितान्त छवि छीन होगया है। वर्तमान काल में भी राज्य ओड़छे ही के नाम से प्रसिद्ध है और वर्तमान टीकमगढ़ नरेश, महाराजाधिराज महेन्द्र सवाई श्री प्रतापसिंह जू देव, जी. सी. आई. ई., हैं; और बुन्देलखण्ड में यही गद्दी सबकी शिरोमणि गिनी जाती है। महाराज का राज्य प्रबन्ध और धर्मरुचि अत्यन्त सराहनीय और उनके शील

* इसका सविस्तर वृत्तान्त जानने के लिये मेरा प्रेतयज्ञ नामक नाटक देखिए।

† कोई कोई प्रेतयज्ञ का स्थान सिंहपौर के निकट बताते हैं।

* प्रगट हो कि विशूचिका के दिनों में इन्हीं हरदेव की पूजा देश देशान्तर में रोग शान्त्यर्थ होती है।

सौजन्य की भी अत्यन्त प्रशंसा हो रही है। क्या ही उत्तम हो यदि टीकमगढ़ नरेश अपनी थोड़ीसी दया का विस्तार अपने पूर्वजों के कीर्तिखम्भ ओड़छे नगर पर भी कर दें और ऐतिहासिक महाराज मधुकरसाह, वीरकेशरी महाराज वीरसिंह देव जी के स्मारक उनकी समाधिओं को, जो शोकप्रद जर्जरित और हीन दशा में अरक्षित पड़ी हैं, सुरक्षित कर उनका जीर्णोद्धार करा दें, जिससे इन प्रातस्मरणीय भारतरत्नों का नाम आगे को भी शेष रहे और वर्तमान महाराज को अपने पूर्वजों को अलौकिक भक्ति की सुकीर्ति प्राप्त हो। पाठक महानुभावो! लेख के अन्त में हम आपको ओड़छे के स्थानों की वर्तमान दशा सुनाया चाहते हैं और जिस समय हम ओड़छा देख रहे थे, उस समय हमारी मानसिक क्या दशा थी उसका भी कुछ साथ ही उल्लेख करेंगे।

राजाताल—झांसी से चल कर जब ओड़छे के निकट हम पहुंचे और ओड़छा दो मील के लग भग रह गया, उस समय हमें एक विस्तृत तड़ाग पर्वत खण्डों के बीच में देख पड़ा। इसके दक्षिण पूर्व दिशा में एक बन्ध बँधा है और बन्ध पर थोड़ो थोड़ो दूर के अन्तर पर घाट की सीढ़ियां बनी हैं; और घाटों के शिर पर छोटे छोटे शिखर जिनके उभय ओर लम्बे लम्बे प्रस्तरखण्डों में मच्छ कच्छ ग्राहादि की मूर्ति कटी हुई हैं; बने हैं, और बन्ध की भांति में ठौर ठौर छोटी छोटी दालाने बनी हैं; बीच बीच में कुए हैं। यह तड़ाग राजातल के नाम से प्रसिद्ध है; और जिस समय इसमें पर्वतखण्डों की ओर से आकर निर्मल जल भरता होगा, उस समय यह सरोवर एक अलौकिक ही छवि दिखाता होगा। परन्तु शोक है कि अब यह जलहीन हो रहा है। ताल में खेती होती है। शिखर टूट फूट गए हैं और अब कोई उसके तट पर ऐसा व्यक्ति शेष नहीं रहा है जो उस राजा का, जिसके नाम का वह ताल है, परिचय देता हो। उस समय का, जब यह ताल जलपूर्ण रहा होगा, अनुभव करते हुए ही जलजीवों की कलोलें दृष्टि में आ जाती हैं और ऐसा अनुभव होता है कि यह तड़ाग एक समय श्रीमानों के क्रीडा कौतुकों का ठौर रहा होगा। इसकी तरङ्गमाला सन्तप्त चित्तों को शान्ति देती रही होगी। परन्तु शोक, कि अब वहां न जल है न जलजीव; न श्री है न श्रीमान; मार्ग भटके हुए पथिक के मुख की क्लान्त छवि की भांति चतुर्दिक ऊभटता ही ऊभटता बरसती है और देखने से चित्त में क्लेश और उच्चाटनभाव उपजता है। और क्यों न उपजे? अब तो रीता सरोवर* है, "रीते सब हि तुच्छ जगमाहीं। बिन परनता गौरव नाहीं"। इसके तट पर दो चार झोपड़ों का एक ग्राम है जो नकटा नाम से प्रसिद्ध है और वास्तविक में इसी नाम के उपयुक्त है, क्योंकि उसके रहते हुए उसके सन्निकटस्थ इस ताल की यह दशा हुई।

[शेष आगे की संख्या में]

बाणभट्ट

[गत अङ्क के आगे]

'हृदय वसतिः पञ्च बाणस्तुबाणः' अर्थात् उक्त पद्य के उत्तरार्द्ध में कवि के मन की झांई कैसी दीख पड़ती है। जयदेव स्वामी ने जो कहा है कि 'कवितावधू के हृदय में वास करनेवाला साक्षात् पञ्चबाण (मदन) ही बाणकवि है उसका भी अभिप्राय यही है। † इन उक्त पदों

---

* इस ताल का दूसरा नाम रामसागर भी है। कहते हैं कि जब रघुनाथ जी की मूर्ति ओड़छे को लाई जा रही थी, तब यहीं पुष्य नक्षत्र समाप्त होगया; इसी कारण इसी तालाव के तट पर दूसरे पुष्य नक्षत्र के आने तक बाग में डेरे डाल दिए गए वह बाग रामबग़ कहाता था, अब उजड़ गया है।

† धर्मदास नाम के कवि ने अपने 'विदग्धमुखमण्डन' संज्ञक ग्रन्थ में ऐसेही आशय की एक छेकापन्हुति लिखी है। वह यह है—

रुचिर स्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनोहरति।
तत्किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य॥

की सार्थकता अगले संग्रहों द्वारा प्रत्यक्ष हो जायगी—

आदि के शूद्रक राजा के स्नानसरोवर का वर्णन

अवतीर्णस्य जलद्रोणीं वारविलासिनी कर मृदित ... ... कुंकुमजलेन वाराङ्गनाःक्रमेण राजानमभिषिषिचुः* ।

कादम्बरी और चन्द्रापीड़ की पहिली भेंट होने के अनन्तर उसे रहने के लिये क्रीड़ापर्वतस्थ बंगला दिलाकर महाश्वेता कादम्बरी के पिता से मिलने के लिये निकल गई। यह क्रीड़ाशैल कादम्बरी के महल के बगल में ही था। पार्श्ववर्त्ती उपवनों की शोभा देखने के हेतु चन्द्रापीड़ बाहर आए हुए हैं, यह देखकर मदनविवश कादम्बरी कुलीनतोचित लज्जा को तिलांजलि दे उन्हें देखने के लिये अपनी अटारी पर आ उपस्थित हुई। उस समय का वर्णन—

कादम्बरी तु तं दृष्ट्वा चिरयतीति महाश्वेतायाः किल वर्त्मावलोकयितु ... ... कालमतिक्रान्तं नाज्ञासीत् ।

वही घटना फिर—

अनतिदूरं गतायां च तस्यां क्रीड़ापर्वतकगतं- ... ... दिवसो बभूव ।

उक्त उभय संग्रहों में कादम्बरी की मुग्ध लीलाओं का वर्णन कितनी उत्तमता के साथ किया गया है! इसी प्रकार के और भी संग्रह यथेष्ट उद्धृत हो सकते हैं; पर वर्त्तमान ग्रन्थ के शृङ्गार का रसिक पाठकों को परिचय करा उन्हें उसका प्रेमी बना देने के लिये उक्त तीन ही संग्रह अलम् होंगे। तथापि यहां पर और भी एक स्थान का विशेषरूप से निर्देश किए बिना हमसे नहीं रहा जाता। पीछे यह तो लिखी आए हैं कि चन्द्रापीड़ मृगया की चिन्ता करते करते गन्धर्वों के प्रदेश को अकेले ही पहुंच गया। आगे कवि ने तदर्थ एक से एक अद्भुत घटनाएं घटित की हैं। पहिली घटना अच्छोद नामक विस्तृत एवम् रम्य सरोवर का दर्शन, दूसरी उस निर्जन बन में दूर पर्य्यन्त श्रवणगत होनेवाला मधुर गायन स्वर, और तीसरी शिवालय में बैठ शिवगीत गानेवाली दिव्यकन्या का दर्शन। यह कन्या महाश्वेता है। आगे उस कन्या ने जब राजा को आदरातिथ्य द्वारा सम्मानित किया, तब राजा ने परिचय चाहा। उसने अपना गन्धर्वकुल का जन्म निवेदन कर, पुंडरीक नामक एक दिव्य ऋषिकुमार के साथ उसकी अचानचक भेंट कैसे हुई, दोनों में तत्क्षण प्रेम किस प्रकार अंकुरित हुआ, और अन्त में रात्रि के समय तदर्थ अभिसरण करने पर उसे मदनव्यथा द्वारा गतप्राण देख कर वह कैसी विषम अवस्था को प्राप्त हुई आदि सब अपनी कथा उसने उसे पूरी पूरी कह सुनाई। यह कथाभाग अत्यन्त ही हृदयभेदक है। इसमें शृंगार, करुणा और अद्भुत ये तीनों रस मिश्रित पाए जाते हैं। शृंगार का यहां पर अंश अत्यन्त शुद्ध होने के कारण और साथही महाश्वेता के मन की गम्भीरता दिखलाई जाने के कारण इस कथाभाग को विशेष शोभा प्राप्त हुई है। स्थानौचित्य की भी यहां पर किसी प्रकार की ऊनता नहीं है। हिमालय के गगनभेदी उत्तुङ्ग प्रदेश यहां के स्थान हैं। सारांश, जिस प्रकार से चन्द्रापीड़ को इस प्रदेश में प्रथम पदार्पण करते ही नितान्त विस्मय एवं हर्ष हुआ, वैसे ही पाठकों को भी होता है, और अगला वृत्तान्त जानने

कोई कहता है "अहा हा! उसके स्वर, वर्ण और पदों का सौन्दर्य कैसा अनोखा है, रस और भाव से चुहचुहाती हुई होने के कारण वह सबके मन पर बड़ी गंभीर चोट करती है!" यह सुनकर दूसरा उससे पूंछता है कि "भाई! क्या यह कोई नायिका है?" उत्तर में वह कहता है "नहीं यह नायिका नहीं है, मैंने यह मधुर शील बाण कवि की वाणी का वर्णन किया है" ॥

उक्त आर्या के 'स्वर', 'पद', 'रस' और 'भाव' क्लिष्ट हैं, इनके अपर अर्थ भी स्पष्ट ही हैं।

* यहां पर स्थानाभाव से ये संग्रह छोड़ दिए गए हैं। संस्कृतज्ञ पाठक इन्हें मूल ग्रन्थ में पढ़कर लेखक के भाव को हृदयङ्गम करलें — स. स.।

के हेतु उनका रसिक मन परमेत्कण्ठित होता है; पर उनकी कल्पना की दौड़ यथार्थ घटना लों नहीं पहुंच पाती। अस्तु; इस स्थान के वर्णन के। यहांपर उद्धृत करने के लिये स्थलाभाव होने के कारण हम विवश हो अपने रसिक एवं विवेकी पाठकों को मन्त्रणा देते हैं कि वे मूल ग्रन्थ द्वारा अपनी मनस्तुष्टि कर लेवें।

शृङ्गार के अतिरिक्त और भी रस इस ग्रन्थ में कहीं कहीं पाए जाते हैं; पर वे अप्रधान होने के कारण उनके उदाहरण यहां पर लिखना अभीष्ट नहीं जान पड़ता। अतः यहां पर अब इस ग्रन्थ में ठौर ठौर पर जो रसपूरित वर्णन उपलब्ध होते हैं उन्हें अपने पाठकों की भेंट करते हैं।

कथा के आदि में तोता जिस विशाल शाल्मली वृक्ष पर रहता था उसका वह वर्णन करता है—

तस्यैव पम्पासरसः पश्चिमे तीरे राघवशरप्रहार-जर्जरितजीर्णतालतरुषंडस्य च समीपे..........
..... विन्ध्यस्य शाखाबाहुभिरुपगूह्य व विन्ध्याटवीमवस्थितो महान् जीर्णः शाल्मली वृक्षः।

प्रथम तो तोते का इतिहास ही बड़ा विलक्षण है; तिसमें भी जब वह शाल्मली वृक्ष पर था, तब का वृत्तान्त, अर्थात् शबरों ने उस बनमें आखेट की, अन्त में एक ने उस पेड़ पर चढ़ अनेक सुग्गों को मारकर नीचे डाल दिया, उस अचिन्त्य एवं विषम आपत्ति से इसने अत्यन्त विलक्षणता पूर्वक अपनी रक्षा की, आदि घटनाएं बहुत ही चमत्कृतिजनक हैं और साथ ही उनका वर्णन भी परमोत्तम है। उन्हें पढ़ते ही मन कैतूहलमग्न हो जाता है, और जान पड़ने लगता है, माने वे अगले ग्रन्थ की उत्तमता का आश्वासन दे रहे हैं। उक्त वर्णन उन्हीं का एक छोटा सा अंश है। इसका रस उदात्त है। इस रस के और भी उदाहरण इस ग्रन्थ में कई स्थान पर पाए जाते हैं। उनमें से यह एक दूसरा है, कि जिसमें उक्त अच्छोदसंज्ञक सरोवर का वर्णन किया गया है—

प्रविश्य च तस्य तरुषंडस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः स्फटिकभूमिगृहमिव ......
...... अतिमनोहरमाल्हादनं हृदयेरच्छोदं नाम सरो दृष्टवान्।

विन्ध्याटवी में उक्त शबरों के मृगयार्थ धूमधाम मचा देने पर उनका सेनापति उक्त सेमर के पेड़ के नीचे श्रम निवारणार्थ बैठ गया; उस समय का वर्णन—

ततः स शबरसेनापतिरटवीपरिभ्रमणसमुद्भवं ....शबरसैन्येनानुगम्यमानः शनैः शनैरभिमतं दिगन्तरमयासीत्।

[शेष आगे की संख्या में]

राजा राममोहन राय

प्रिय पाठकगण! धन्य है वह देश और वह भूमि जहां सदा ऐसे देशहितैषी और परोपकारी पुरुष जन्मग्रहण करते हैं जो दुसरों के लिये आदर्श खड़ा कर देते हैं। किन्तु हमारे भारतवर्ष में अब इसकी बहुत ही कमी हो गई है। यदि कोई ऐसा मनुष्य जन्म भी लेता है, तो हम उसका इस कारण से निरदार करते हैं कि उसके सिद्धान्त हमारे अनुकूल नहीं होते। किन्तु यह हमारी भूल है कि हम केवल कुछ सिद्धान्तों के प्रतिकूल होने पर उस देशहितैषी के सब कार्य्यों पर पानी फेर दें। यह प्रथा कुछ काल से भारतवर्ष में प्रचलित हुई है। महात्मा बुद्ध, जिन्होंने भारत में जन्मग्रहण किया था, बड़े परोपकारी थे। उनके विरोधी उनकी निन्दा करते थे। वैसेही महर्षी शङ्कराचार्य की द्वैत मतवालों ने अप्रतिष्ठा की है। हमारी उपर्युक्त बातों का यह सारांश नहीं है कि उनके सब सिद्धान्त अङ्गीकार कर लिए जांय। हामरा अभिप्राय केवल यही है कि उनकी देशहितैषिता पर मिट्टी डालदेना हमारे लिये वैसोही कृतघ्नता का कार्य है जैसा की 'सुकरात' के साथ उसके देशवासियों ने

किया था। हमलोगों को इस विषय में युरोपीय जातियों की ओर ध्यान देना चाहिए और देखना चाहिए कि वे इस विषय में क्या सम्मति रखते हैं।

एक समय महात्मा ब्रैडला जो कि नास्तिक थे (अर्थात् ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते थे) बड़े रोगग्रसित हुए। उनके देशवासियों ने, यद्यपि वे जानते थे कि वह अनीश्वरवादी हैं, मिलकर उनकी आरोग्यता के लिये गिरजाघर में प्रार्थना करनी आरम्भ कर दी। यद्यपि इङ्गलैण्डवासी जानते थे कि वह नास्तिक हैं, तथा उनसे मत विभेद रखते थे, किन्तु उनकी देशहितैषिता पर पानी फेर कर वे अपने माथे पर कलङ्क का टीका कदापि लिया नहीं चाहते थे और यह कहते थे कि ऐसे देशहितैषी परोपकारी महात्मा लोग सदा देश में उत्पन्न होते रहा करें। परोपकारी महात्माओं का जीवन और सिद्धान्त सदा स्थिर रहता है, क्योंकि "इस संसार में प्रभुत्व के साथ सिद्धान्त ही शासन करता है"। बिना धन और किसी सांसारिक बल के, परोपकारी जीव लाखों मनुष्य पर प्रभुत्व जमा लेता है। ऐसा जीवन गुलाब के पुष्प के सदृश है, कि जो जीवित अवस्था में महकता है और मुरझाकर सूख जाने पर भी उसी भांति सुगन्ध देकर परोपकार करता है। प्यारे सज्जनो! आज हम राजा राममोहन राय की जीवनी संक्षेप में लिपिबद्ध करने का उद्योग करते हैं। उक्त राजा साहब ने ऐसे समय में जन्म लिया था जब कि हमारे देश में महा अन्धकार फैल रहा था। जिस देश को मिग्यास्थनीज़ ने देखा था, जो फायान और और हीयंथशाङ् के नयनगोचर हुआ था, वह देश अब यह नहीं रहा। इस समय देश की राजकीय तथा सामाजिक अवस्था दोनों भ्रष्ट हो रही थीं। किसी किसी भाग में तो सामाजिक अवस्था इस अवनति को प्राप्त हो गई थी कि एक एक मनुष्य सैा से अधिक स्त्रियों से विवाह कर सकता था।

राजकीय अवस्था भी ऐसीही अवनति को प्राप्त थी। कई प्रान्तों में आपस के द्वेष तथा विरोध के कारण पुरी अशान्ति फैल रही थी। ऐसे अशान्ति काल में राजा राममोहन राय का जीवन धारण करना इस बात के सिद्ध करता है कि भारत में समयानुकूल देशहितैषी प्रगट हुआ करते हैं। भारत के इतिहास में सन् १७७४ ईसवी कई बातों के लिये प्रसिद्ध है। उनमें से यह साल सबसे अधिक प्रसिद्ध इन महाशय के जन्म के कारण है।

ये महात्मा, जिनका नाम राजा राममोहन राय है, एक छोटे से राधानगर नामक ग्राम में, जो कृष्णनगर, ज़िला हुगली, के समीप है, उत्पन्न हुए थे। जिस वंश में ये उत्पन्न हुए थे वह एक उच्चश्रेणी के ब्राह्मण का वंश था, जिसने औरङ्गज़ेब के समय में ब्राह्मण वृत्ति के छोड़ कर नैाकरी करनी अङ्गीकार कर ली थी। इनके पुर्खों में सबसे पहिले राय कृष्णचन्द्र बैनरजी ने नवाब मुर्शिदाबाद के यहां नैाकरी करनी आरम्भ की। कृष्णचन्द्र के तीन पुत्र थे, अमरचन्द, हरिप्रसाद, वृजविनोद, वृजविनोद के सात पुत्र हुए जिनमें एक का नाम रमाकान्तराय था। और यही हमारे चरित्रनायक सुप्रसिद्ध राजा राममोहन राय के पिता थे। इनकी माता भी बड़ी सुशीला और गुणवती थी, इनका घराना वैष्णव सम्प्रदाय का अनुगामी था।

इस समय दो प्रकार की शिक्षा दी जाती थी, एक तो पण्डितों की पाठशाला और दुसरी मैालवियों के मकतब में। फारसी शिक्षा राजा साहब को घर पर दी जाती थी, परन्तु संस्कृत पाठ के लिये उन्हें पाठशाला में जाना पड़ता था। अरबी की शिक्षा पाने के हेतु उनके पिता ने उन्हें नैा वर्ष की अवस्था में पटने भेज दिया था। अपनी बुद्धि की तीक्ष्णता से इन्होंने दो ही बर्ष में इस भाषा में बहुत कुछ योग्यता प्राप्त करली थी। पटने से वह बनारस संस्कृत विद्यालाभार्थ और हिन्दूमत से

परिचित होने के लिये बारह वर्ष की अवस्था में भेजे गए। संस्कृत विद्या पढ़ने के पीछे राजा साहब घर लौट आए। तब उस समय बराबर धर्म-सम्बन्धी बातों पर विचार किया करते थे, जिसके कारण से पिता पुत्र में मतविरोध प्रारम्भ हुआ। कभी कभी आपस में वादानुवाद भी हो जाया करता था। रमाकान्त राय को अपने पुत्र को यह दशा देख कर प्रसन्नता के साथ ही साथ एक प्रकार की घृणा उत्पन्न हो गई थी, जिसका परिणाम अन्त में यह हुआ कि इसी मतविरोध के कारण पिता ने अपने पुत्र को घर से निकाल दिया। घर से निकलने पर राजा साहब ने देश भ्रमण आरम्भ किया, और इसी देशाटन की अवस्था में हिन्दुस्तान के कई मतों की पुस्तकों को उन्होंने पढ़ा। इसके बाद वे हिन्दुस्तान की सीमा के बाहर चले गए, और हिमालय के उस पार तिब्बत में जा पहुंचे। इनके वहां जाने के दो कारण बताए जाते हैं। एक यह कि अंगरेज़ी राज्य से उन्हें घृणा थी, दुसरे यह कि बौद्धमत के अनुसन्धान की इन्हें बड़ी इच्छा थी। जो कुछ हो, इसे पाठक स्वयं अपने लिये विचार लें, परन्तु ऐसी अवस्था में जब कि न तो सड़क इतनी उत्तम थी और न रास्ते में सुख देनेवाली चीज़ें मिल सकती थीं, एक सोलह वर्ष के बंगाली बालक का भारतवर्ष में विचरते हुए अन्य देश में बिना मित्र या बिना किसी सहायक के जाना कोई साधारण काम नहीं था। इससे मालूम होता है कि राजा साहब एक असाधारण मनुष्य थे।

तिब्बत पहुंच कर भी इन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा, क्योंकि वहां भी यह निर्भय होकर तिब्बत-वालों के मत का खण्डन करने लगे थे, और इसी कारण वहां इनके बहुत से शत्रु हो गए थे, जो इन्हें किसी न किसी प्रकार सदा कष्ट देते रहते थे। सौभाग्य से कोमलहृदय बालिकाओं ने इनकी पूरी सहायता की और उसी समय से उनके चित में स्त्रियों की प्रतिष्ठा ने स्थान पाया।

चार वर्ष देश बिदेश भ्रमण करने के उपरान्त राजा साहब अपनी जन्मभूमि को लौट आए, और उसी समय में उनके पिता को भी उनकी बड़ी खोज थी, क्योंकि अब वे पुत्र के वियोग में बड़े दुःखी हो गए थे। परन्तु फिर भी पिता पुत्र में न बनी और पिता ने फिर उन्हें घर से निकाल दिया। परन्तु इस बेर वे द्रव्य से अपने पुत्र की सहायता करते रहे। इसी समय राजा साहब ने अङ्गरेज़ी पढ़ना आरम्भ किया। इनकी अवस्था इस समय २२ वर्ष की थी, और सन् १८०१ ई० में इन्हें अङ्गरेज़ी नौकरी करने का ध्यान आया; क्योंकि वह इस बात को कब सहन कर सकते थे कि पिता से अलग होकर जीवन निर्वाह के लिये उनके अधीन बने रहें। उस समय भारतवासियों को अङ्गरेज़ी साधारण नौकरी के लिये १००) मासिक वेतन मिला करता था। उस समय के अङ्गरेज़ कर्मचारियों का बर्ताव अपने 'मातहतों' के साथ बहुतही बुरा होता था, इसलिये राजा साहब ने अपनी नौकरी के निवेदनपत्र पर यह भी जता दिया कि जब मैं किसी कार्य के लिये अपने अफ़सर कर्मचारी के सामने आऊं, तो मुझे बैठने को स्थान मिला करे, और दूसरों के समान मुझसे बर्ताव बुरा न किया जाय। मिस्टर डिगबी जैसे कृपाशील हाकिम ने इनकी इन बातों को शीघ्र स्वीकार कर लिया। सन १८०४ ई० में राजा साहब के पिता का देहान्त हुआ, और इनके पिता ने अपनी कुल सम्पति मृत्यु के पूर्व ही अपने अन्य तीन पुत्रों में बांट दी थी; राजा साहब को कुछ भी नहीं दिया था। परन्तु राजा साहब ने भी इसकी कुछ परवाह न की; हमारे सन्तोषी महात्मा को सांसारिक धन की लालसा न थी।

सन् १८१३ ई० में राममोहन राय ने तेरह वर्ष की नौकरी के पश्चात्, जिसमें कि उनकी वहां सदा बड़ाई होती रही, इस्तीफ़ा दिया। इस नौकरी से उन्हें इतना लाभ तो अवश्य हुआ कि उन्हें ऐसे उपाय मिलगए जिससे भविष्यत में वे अपने जीवन

का काम स्वतन्त्रता के साथ कर सकें। उनके अफ़सर कर्मचारी उनके उत्तम कार्य के कारण उनसे बहुत ही प्रसन्न रहा करते थे, और काम करने ही से केवल उनकी पदवी शीघ्र बढ़ा दी गई थी, अर्थात् शीघ्र ही इन्हें दीवनी की शिरिश्तेदारी का पद प्रदान किया गया था।

इसी समय के लगभग जब उनके ज्येष्ठ पुत्र राधाप्रसाद का विवाह एक माननीय पुरुष के यहां हुआ, तो लोगों ने बहुत विरोध किया। यह विरोध यहां तक बढ़ा कि बहुत से लोगों ने एकमत हो उनके घर में हड्डियां फेंकनी आरम्भ कर दीं। किन्तु राजा साहब ने बदले में उन्हें सताने का ध्यान तक भी न किया और बराबर धैर्य के साथ सहन करते रहे। परन्तु इस बात से उन्हें इतना कष्ट नहीं हुआ जितना माता की ओर से आक्षेप होने से हुआ। उनकी माता ने उनका अपने गृह और ग्राम में रहना पसन्द नहीं किया, जिससे उन्हें अपनी जन्मभूमि त्याग कर रघुनाथपुर के स्मशान के निकट एक छोटी सी झोपड़ी बना कर रहना पड़ा।

किन्तु सन् १८१४ ई० में जब कि उनकी अवस्था चालीस वर्ष की हुई तो वे कलकते चले गए. और वहां रह कर और समाज संशोधन के कार्य में लगे, तथा अपना तन मन धन सब इन्होंने इसी देशोपकार में लगा दिया और देश की यावत् कुरीतियों के विरुद्ध आम तौर से विरोध का झण्डा खड़ा कर दिया। उस समय सारे बङ्गदेश में कोलाहल मच गया। बाबुओं की बैठक में, महाचार्यों की पाठशालाओं में, सारांश यह कि जहां चार मनुष्य एकत्र होते थे वहां इसके अतिरिक्त दूसरी चर्चा नहीं होती थी। परन्तु उस समय भी पठित समाज इनके पक्ष में था।

राजा साहब ने अपने मत प्रचार के लिये चार उपाय निकाले—एक मौखिक शास्त्रार्थ, दूसरा विद्यालय स्थापन करना, तीसरा पुस्तक तथा लेखों का मुद्रण कराना, चौथे समाज वा सभा संस्थापन करना। इनमें से पुस्तक रचना की ओर उन्होंने अधिक ध्यान दिया। सन् १८१५ में वेदान्तसूत्र का बङ्गला तथा हिन्दी में इन्हींके उद्योग से अनुवाद होगया, और सन् १८१६ ई० में वह अङ्गरेज़ी सांचे में ढाला गया। इसके बाद वेदान्तसार को अङ्गरेज़ी में छपाया जिसका संशोधन मि० डिगबी ने किया था। इन्होंने एक भूमिका अपनी ओर से बढ़ा दी थी। जिस समय यह पुस्तक प्रकाशित हो कर तैयार हुई और पहिले पहल पादड़ियों के हाथ में पड़ी, तो वे विचारे बड़े आश्चर्य्य में आए। उन्हें यह देख कर कि हिन्दूधर्म्म में भी ऐसे गूढ़ दर्शनशास्त्र की पुस्तकें विद्यमान हैं, अति आश्चर्य्य हुआ और भारतवर्ष के धर्म्म का तत्व उनपर कुछ कुछ विदित होने लगा। वेदान्तसार के प्रकाशित होते ही राजा साहब ने पांच उपनिषदों का अनुवाद बङ्गला में कराके प्रकाशित करा दिया। इन पुस्तकों के प्रकाशित होते ही बङ्गदेश में यह कोलाहल मचगया कि "बस अब घोर कलियुग आ गया"। और प्राय पण्डितों से उनसे शास्त्रार्थ हुआ करता था जिसमें राजा साहब बराबर वेद, शास्त्र और उपनिषदों का प्रमाण दिया करते थे। उनके ये शास्त्रार्थ प्रायः हिन्दी बङ्गला और संस्कृत में छपे हैं।

राजा साहब में यह एक विलक्षण गुण था कि जो पुरुष उनके पास शास्त्रार्थ करने को आता, उसे वह इतने शान्तरूप से उत्तर देते कि उसे इनकी बातें माननी ही पड़ती थीं।

एक समय रेवेरेण्ड विलियम ऐडम महाशय ने राजा साहब को बैप्टिज़्म् दे कर क्रस्तान बनाना चाहा। परस्पर वादानुवाद होनेपर ऐडम साहब को ही हार माननी पड़ी और उन्होंने अपना पादड़ीत्व त्याग दिया। इस बात पर क्रिश्चियन समाज में बड़ी हल चल मची। ऐडम साहब की पादड़ियों ने बड़ी निन्दा की। परन्तु ऐडम महाशय ने भी बड़ी दृढ़ता से इसको सहन किया।

मनुष्य की मृत्यु के उपरान्त, चाहे वह साधारण हो वा असाधारण, उसकी कीर्ति ही इस संसार में पीछे रह जाती है, और किसी सत्पुरुष की

जीवनी लिखने से भी यही अभिप्राय है कि उसके पाठ से लोग लाभ उठावें ग्रैार उसकी कीर्त्तियों का अपना आदर्श बनावें। एवं हम भी आज अपने चरित्रनायक की कीर्ति का कुछ वर्णन आपके सम्मुख रखते हैं। बड़े आदमियों के चरित्र पढ़ने से यह सिद्ध होता है कि एक साधारण नित्यप्रति की बात पर उसके जीवन ने कैसा पलटा खाया है। अब इसी प्रकार हमारे राजा साहब के हृदय पर सतीदाह की प्रथा ने बहुत बड़ा प्रभाव डाला। इन्होंने पहिले पहल अपने भाई जगमोहन राय की पत्नी के। अपने पुरुष के साथ सती होते देखा। सती होने के समय बाजा बड़े ज़ोर से बजाया था, जिसमें उसके आर्त्तनाद का शब्द सुन न पड़े। वह स्त्री अपने प्राण बचाने के हेतु अग्नि से निकल निकल भागती थी, परन्तु उसके घरवाले बांसों से उसे रोकते थे। इसका प्रभाव उनके चित्त पर इतना पड़ा कि उन्होंने तत्क्षण प्रतिज्ञा की कि "इस कुरीति के। जड़ मूल से उखाड़ देना ही उचित ग्रैार न्यायसङ्गत है"। राजा साहब ने अपनी इस प्रतिज्ञा के। पूर्ण कर दिखाया। जिस समय बृटिश गवर्नमेण्ट इस विषय में हस्तक्षेप करना अनुचित समझ मैानधारण किए बैठी थी, उस समय राजा राममोहन राय का इस अत्याचार से पीड़ित अबलाओं के सहायतार्थ उद्यत होना सब प्रकार सराहनीय है। सती प्रथा के। दूर करने के लिये उन्होंने सबसे पहिले तीन पुस्तकें बनाईं ग्रैार सर्व साधारण में उन्हें बिना मूल्य वितरण किया। केवल इतना नहीं, वह स्मशान में स्वयं जाते ग्रैार इस कठोर कार्य के रोकने का उपदेश देते थे।

४ थी दिसम्बर, १८२९, का दिन भारतवर्ष के इतिहास में स्मरण योग्य है। उस दिन लार्ड बेनटिङ्क की कैान्सिल ने अपने इजलास से इस प्रथा के। बन्द करने का नियम प्रचलित किया। इस आईन के प्रकाश होने के पूर्व लाट महोदय ने राजा साहब के। बुलाकर इस विषय में उनसे सम्मति ली। इस शुभमिलन का फल भी शुभ ही हुआ।

इस नियम के पास होने पर देशी सोसाइटी में बड़ी व्यग्रता फैली। बङ्गाल में यह हलचल मचा कि अब "घोर कलियुग" आन पहुंचा ग्रैार गवर्नमेण्ट ने भी धर्म विषय पर हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। इन सब बुराइयों का मूल राजा साहब के। माना गया। राजा साहब इसलिये बड़े विपद में पड़े। इनके जातिवालों ने इन्हें जाति से अलग कर दिया। परन्तु सत्पुरुष महात्मा अपने जीवन के। अपने कर्तव्य के सामने तुच्छ विचारते हैं, ग्रैार अपने उद्देश्य में अन्त तक एक समान उत्साह बनाए रखते हैं। इसी प्रकार राजा साहब ने अपने कर्तव्य के। भी अन्त तक पहुंचाया।

राजा साहब हिन्दू स्त्रियों के उपकारार्थ दूसरे उद्योग भी करते रहे। सन् १८२२ में उन्होंने एक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने पुत्रियों के बेचने तथा कई एक विवाह की बुराइयों के। दिखलाया ग्रैार शास्त्र से यह सिद्ध किया कि स्त्रियां भी अपने पति की उत्तराधिकारिणी हो सकती हैं।

अङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट के उपकारों में से जिस उपकार का भारतवासियों ने विशेष आदर किया है, ग्रैार करना चाहिए, वह अङ्गरेज़ी शिक्षा है। अङ्गरेज़ी शिक्षा ग्रैार सभ्यता ने मिल कर भारतवर्ष के लिये सञ्जीवनी का काम किया है। इन दोनों ने मिल कर मृतक शरीर में मानो प्राण डाल दिए हैं। यह इसी शिक्षा का फल है कि यह भारतवर्ष बीस वर्ष के पीछे अगला सा भारतवर्ष नहीं रहता, अर्थात् इसमें नित्य नए परिवर्तन हुआ ही करते हैं। ऐसे समय में जब कि न गवर्नमेण्ट उपकार किया चाहती थी ग्रैार न भारतवासी इसकी आवश्यकता से विज्ञ थे, राममोहन राय महात्मा के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि भारत के उद्धार का केवल यही एक मात्र उपाय है। इस विश्वास के साथ उन्होंने इस विषय में भी उतना ही उद्योग किया जितना किसी ग्रैार संशोधन के विषय में वे करते। राजा साहब, डरु डोयस साहब (जो स्काटलैण्ड के रहनेवाले

थे और भारतवासियों से अत्यन्त प्रेम रखते थे), तथा बङ्गाल के कुछ और माननीय महाशयों ने १८१६ में एक हिन्दू कालिज स्थापित किया। इस कालिज के स्थापन करने का गौरव सर हाईडेस्ट (चीफ़ जस्टिस सुप्रीम कोर्ट) और डयुडोयस महाशय को दिया जाता है। परन्तु यदि वास्तव में देखा जाय तो राजा साहब भी इस सम्मान के अंशभागी होने के योग्य हैं; क्योंकि उन्होंने भी गुप्तरीति से इसकी बहुत कुछ सहायता की थी। इसी समय कालिज के हितैषियों ने राजा साहब से उनके सम्मिलित होने के विषय में राय पूछी, जिसपर उन्होंने अपनी स्वाभाविक उदारता से उत्तर दिया कि "यदि इस प्रस्तावित कालिज के साथ मेरा सम्बन्ध रखने से कुछ भी हानि हो तो मैं उसके साथ अपना सम्बन्ध नहीं रखा चाहता"। प्यारे पाठक! सज्जन सदा कार्य्य के पूर्ण होने पर ध्यान देते हैं, न कि यह विचारते हैं कि वह कार्य्य हमारे द्वारा हो वा उसका यश हमें मिले। वरन् दूसरे किसीके द्वारा कार्य सिद्ध होने पर भी उन्हें उतनी ही प्रसन्नता होती थी।

सन् १८३३ में लार्ड ऐम्हर्स्ट की गवर्नमेण्ट ने उस धन से जो शिक्षा के निमित्त गवर्नमेण्ट में एकत्रित था, एक संस्कृत कालिज स्थापित किया। राममोहन राय ने गवर्नमेण्ट को इस विचार को छोड़ देने के हेतु एक पत्र लिखा और उसमें यह भी सिद्ध किया कि इस समय अङ्गरेज़ी शिक्षा की बड़ी ही आवश्यकता है, जिससे लोगों पर इसका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। बहुतेरों ने तो इसे प्रामाणिक और समयोपयोगी स्वीकार किया। उनके पत्र से लाभ यह हुआ कि हिन्दु कालिज (अङ्गरेज़ी) और संस्कृत कालिज दोनों एकही मकान में स्थापित हुए, जिससे हिन्दुकालिज को कई रीति से सहायता मिलती रही। उन्होंने स्वयं अपने व्यय से एक कालिज खोला जिसमें माननीय पुरुषों के लड़के शिक्षा पाते थे। १८२० वा २२ ईसवी में यह विद्यालय स्थापित हुआ। उन्होंने जिस तरह अङ्गरेज़ी शिक्षा के प्रचार के लिये उद्योग किया उसी प्रकार अपनी मातृभाषा के प्रचारार्थ भी वे चेष्टा करते रहे। इनके पूर्व बङ्गला भाषा में गद्य लेख की प्रथा प्रचलित न थी। फोर्ट विलियम कालिज के लिये दो तीन पुस्तकें गद्य में नई नई बनी थीं। परन्तु राममोहन राय के धार्म्मिक शास्त्रार्थों ने बङ्गला में गद्य के लिये मार्ग खोल दिया। सन् १८१७ में जब कलकत्ता बुक सोसाईटी स्थापित हुई तो उसमें भी इन्होंने बहुत कुछ सहायता दी। यद्यपि पद्य की अपेक्षा गद्य उन्हें अधिक भाता था, परन्तु तौभी पद्य से उन्हें कुछ ऐसी अरुचि न थी। ब्रह्मसङ्गीत के येही महाशय अधिष्ठाता थे। ये गीतें इस समय तक बङ्गदेश में जातीय संगीत मानी जाती हैं। क्या ब्रह्मसमाजी, क्या हिन्दु, सभी इन पद्यों का गान करते हैं।

धर्म्मसम्बन्धी, सामाजिक तथा विद्यासम्बन्धी विषयों के उपरान्त उनका समय राजकीय विषयों के विचारने में भी व्यतीत होता था। जिस महापुरुष ने अपने देश की यावत् बुराइयों को दूर करने का बीड़ा उठाया हो, वह राजकीय अभावों को देखकर भला कब मौन रह सकता है। सामाजिक विषय में जैसे ये महाशय सबसे प्राचीन लीडर माने गए हैं, वैसे ही राजकीय विषय में भी इन्हींको सबसे प्रथम अग्रगण्य मानना पड़ता है। इन्हींके समय से मानो पोलिटिकल एजिटेशन (राजकीय विषयक अन्दोलन) की प्रथा चली है। यह बात इनपर अच्छी तरह से भास गई थी कि अङ्गरेज़ी शासन में हमें राजनैतिक तथा सामाजिक उन्नति करने का अत्योत्तम अवसर है। राजा साहब समाचारपत्रों तथा उनकी स्वतन्त्रता की आवश्यकता से पूर्ण विज्ञ थे। जब इसका अवसर आन पड़ा तो उन्होंने इसके लिये कोई चेष्टा उठा न रक्खी। कलकत्ता जरनल नामक एक पत्र कलकत्ते में प्रकाशित होता था। सन् १८२३ में उसके स्वामी मिः बकिङ्घम पर उस

समय के गवर्नर जेनरल मिः जान ग्राडम का किसी कारण कोप प्रगट हुआ, और उन्हें आज्ञा हुई कि वे भारतवर्ष छोड़ के बाहर चले जांय। इसके पश्चात् ही सारे समाचार पत्रों की स्वाधीनता भी छीन ली गई। इस अवसर (अर्थात् ता० १४ मार्च सन् १८२३) पर राजा साहब की सबल लेखनी न्याय का पक्ष ले कर उठी और बहुत से माननीय मनुष्यों के हस्ताक्षर करा के एक निवेदनपत्र सुप्रीम कौन्सिल में भेजा गया; परन्तु कई कारणों से उसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ, जिससे राजा साहब को अत्यन्त दुःख प्राप्त हुआ। पर उन्होंने धीरता को न छोड़ कर एक दूसरा निवेदनपत्र तैयार कर इस बेर इङ्गलेण्डेश्वर की कौन्सिल में भेजा, जिसका एक एक अक्षर हम पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते परन्तु लेख बढ़ जाने से ऐसा नहीं कर सकते। ८० वर्ष पूर्व उन्होंने ऐसे उच्च मानसिक भावों का प्रादुर्भाव दिखाया है जो इस समय पाया जाता है। इस निवेदनपत्र का यह परिणाम हुआ कि उस समय के हाकिमों के चित्त में राजा साहब की ओर से शङ्का उत्पन्न होगई।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यदि राममोहन राय उस समय उसी तरह समय का रुख देखते जैसा कि आज कल के बहुत से देशहितैषी देखते हैं तो इस समय हमको एक दूसरे ही राममोहन राय दिखाई देते। वे अपनी धुन के पक्के थे। अपने काम से काम रखते थे और खुशामद से दूर भागते थे। सन् १८२८ ईसवी में एक और लिखने योग्य घटना उपस्थित हुई। सन् १७९३ के १९वें नियम का जो बन्दोबस्त (Permanent Settlement) इसतमरारी (स्थायीप्रबन्ध) के सम्बन्ध में था, परिवर्तन सन् १८१९ के २रे नियम से हुआ। किन्तु सन् १८२८ में भूमि के प्रबन्ध का कुल भार ज़िले के कलक्टर पर छोड़ दिया गया। तीन काम एकही हाकिम के हस्तगत कर दिए गए। अर्थात् (१) कलक्टर ही इस बात की जांच करें कि कौन सी भूमि ऐसी कररहित (लाखिराज) है जिसका कर वसूल होना चाहिए; (२) कलक्टर ही ऐसी भूमि के भोगनेवालों पर सरकार की ओर से मुक़द्दमा चलावे और (३) कलक्टर ही स्वयं न्यायाधीश बनकर न्याय करे—जिससे कि माफ़ीदार ज़िमींदारों की बड़ी हानि हुई। बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा में इसके विरुद्ध बड़ा आन्दोलन मचा था और वहां की प्रजा राममोहन से सहायता की प्रार्थी हुई। राजा साहब के निकट एक मनुष्य की हानि बड़ी बात थी। इससे तो भला बहुतों के गले पर छुरी फिरती थी। राजा साहब ने प्रसन्नतापूर्वक उनकी सहायता करनी और उनके अग्रगामी बनना स्वीकार किया और एक युक्तिपूर्ण निवेदनपत्र गवर्नर जेनरल की सेवा में भेजा। इसका प्रभाव इतना तो अवश्य हुआ कि उस समय यह नियम टाल दिया गया, परन्तु बिलकुल तोड़ा न गया। इसपर राजा साहब ने इसकी अपील विलायत तक की और स्वयम् भी विलायत जाने पर सर्वदा इसकी चेष्टा करते रहे। इसके अतिरिक्त सन् १८२९ व १८३० में हिन्दुओं के क़ानून विरासत (Law of Inheritence) का झगड़ा उठा, जिसमें भी राजा साहब ने स्वदेशियों की बड़ी सहायता की। १८३० में राजा साहब ने विलायत यात्रा की तैयारी की जिसके लिये वे बहुत काल से इच्छुक थे। परन्तु अर्थाभाव से ऐसा न कर सकते थे, क्योंकि उन्होंने अपना समस्त द्रव्य देशहित के लिये व्यय कर दिया था। परन्तु दैवयोग से इस कठिनता को परमेश्वर ने दूर कर दिया। अर्थात् उन्हीं दिनों में शाह देहली की सरकार कम्पनी के विरुद्ध कुछ शिकायत उत्पन्न हुई जिसको उन्होंने इङ्गलेण्डेश्वर की कौंसिल में उपस्थित करना चाहा। इस कार्य के लिये शाह देहली ने राममोहन को पसन्द किया और इसी समय अपनी ओर से उनको राजा की पदवी दी। उन्होंने उनकी विलायत यात्रा का समस्त व्यय भी अपने माथे लिया और इस प्रकार राजा साहब

के। अपना प्रतिनिधि बनाकर विलायत भेजा। भारतवासी माननीय पुरुषों में राजा साहब ही सबसे प्रथम विलायत जानेवालों में से थे। विलायत में पहिले ही से इनकी बड़ी धूम थी, क्योंकि इनकी सर्वोत्तम योग्यता इनकी लेखनी द्वारा अपना प्रभाव पहिले ही से विलायत में जमा चुकी थी। विलायत में अनेक मनुष्य इनसे मिलने के। उत्सुक थे और बहुत से नयनचकोर चन्द्र दर्शन की भांति इनकी ओर लगे हुए थे।

बहुत से विख्यात पुरुषों का यह विचार था कि उन्हें अपने जीवन में एक समय भी इनसे मिलने का सैाभाग्य प्राप्त हो। भारतवर्ष से जहाज़ में चढ़कर लिवरपूल इत्यादि होते हुए और लोगों से मिलते हुए लण्डन में जिस समय कि 'इण्डियन रिफार्म बिल' (Indian Reform Bill) उपस्थित होने के। था, ठीक उसी समय राजा साहब पहुंचे। यद्यपि वे इस बिल के वादानुवाद में संयुक्त न हो सके, परन्तु इस बात से कि यह बिल भारतवर्ष के अनुकूल पास हुआ, उन्हें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई।

अङ्गरेज़ जाति की तरफ़ से राजा साहब का जो कुछ स्वागत हुआ उसे हम स्थानाभाव से अपने पाठकों के। सुनाने में असमर्थ हैं। परन्तु यह कहे बिना नहीं रह सकते कि आज तक किसी भारतवासी का विलायत में इतना आदर भाव नहीं हुआ था। अब हमको देखना चाहिए कि सरकार अङ्गरेज़ ने उनके साथ कैसा बर्ताव किया। यद्यपि इण्डिया कम्पनी ने शाह देहली की तरफ़ से उनका प्रतिनिधि होना स्वीकार नहीं किया, परन्तु तौभी उसने राजा साहब का पूरा पूरा स्वागत किया और एक श्रेष्ठ माननीय पुरुष की नाईं उनका सम्मान किया। गवर्नमेण्ट ने उनको राजा की पदवी के। स्वीकार किया। इङ्गलैण्डेश्वर के सिंहासनारोहणोत्सव के समय अन्य देशीय राजदूतों के साथ उन्हें भी स्थान मिला और शाह की ओर से इन्हें भी निमन्त्रण मिला। परन्तु इन सब सम्मानों से बढ़ कर यह सम्मान था कि १८३२ ई० में हाउस आफ़ कामन्स (House of Commons) की जो एक सभा भारतसम्बन्धी विषयों पर विचार कर रही थी, उसमें इन्हें भी स्थान मिला और इनकी साक्षी लीगई। प्रत्येक प्रश्न पर, जिसका सम्बन्ध भारत से था, उनकी साक्षी लीगई थी। इन प्रश्नों पर इन्होंने ऐसी उत्तमता तथा बुद्धिमत्ता से विवाद किया जैसा कि आज कल का कोई नवीन पठितसमाज वा नैशनल काङ्ग्रेस का एक प्रतिनिधि कर सकता है।

राजा साहब ने अपनी मातृभाषा में बहुत से ग्रन्थ लिखे। इन पुस्तकों के प्रकाशित होने से यह लाभ बड़ा भारी हुआ कि बङ्गदेश में संस्कृत शिक्षा और वेद वेदाङ्ग का अत्यन्त प्रचार हुआ और इसके साथ बङ्गाली भाषा की उन्नति हुई, जैसा कि पण्डित रामगति न्यायरत्न ने अपनी " बङ्गली भाषा तथा साहित्य" नामक पुस्तक में लिखा है कि "यह अवश्य मानने योग्य है कि राममोहन राय के समय में उनकी रचित और अनुवादित पुस्तकों और लेखों और उनके विरोधियों की रची प्रश्नोत्तर पुस्तकों और लेखों के द्वारा ही सबसे पहिले बङ्गला गद्य की प्रणाली उत्तम रीति पर बदली है।" राजा साहब अपनी रचित पुस्तकों द्वारा आर्थिक लाभ नहीं उठाना चाहते थे, जैसे कि एक फरांसासी एम. डी. स्कोटा महाशय, जो कि टाइम्स (Times) पत्र के सम्पादक थे, लिखते हैं कि "वह अपनी रचित पुस्तकों से द्रव्योपार्जन नहीं किया चाहते थे, न वह सरकार से किसी उच्चपद के के अभिलाषी थे"।

किसी किसी अङ्गरेज़ी लेखक ने हमारे प्रसिद्ध महात्मा के। आल राउन्ड रिफार्मर (All round reformer) अर्थात् चैातरफ़ा संशोधन करनेवाले की पदवी दी है, जिससे उन लेखकों का यह अभिप्राय है कि वह सामाजिक और राजनैतिक दोनों विषयों में दखल देते और संशोधन करते थे। दोनों विषयों पर ध्यान देना उनकी प्रतिष्ठा के।

बढ़ाता है; क्योंकि जब हम मनुष्यजीवन के प्रत्येक अंशों को एक साथ उन्नत न करेंगे, तो हम उसके किसी अंश की उन्नति नहीं कर सकते। राजा साहब अनेक भाषा के ज्ञाता थे; उन्हें भिन्न भिन्न मतों की पुस्तकों के पढ़ने और छान बीन करने की बड़ी रुचि थी।

लण्डन में रहकर उन्हें इतना मानसिक और शारीरिक परिश्रम करना पड़ा था कि वे कुछ काल के लिये विश्राम लेने को ब्रिस्टल चले गए, किन्तु यह विश्राम अनन्त विश्राम में परिवर्तित हो गया। राजा साहब अपने जीवन के कार्य्य को, जो ईश्वर ने उन्हें सौंपा था, पूर्ण कर चुके थे, अब उनके लिये विश्राम ही विश्राम था। उन्होंने विश्राम के लिये ऐसी शय्या पर शयन किया जिसपर सोकर आज तक कोई भी नहीं उठा।

११ सितम्बर, १८३३ ई०, को योग्य पुरुषों की एक बृहत्सभा राजा साहब से मिलने और वार्तालाप करने को स्टेपिलटन (Stapleton) नामक स्थान में एकत्रित हुई, जिसमें भारतवर्ष सम्बन्धी सामाजिक और राजनैतिक विषयों के प्रश्न राजा साहब से किए गए। उनका उत्तर राजा साहब पूर्णतया देते रहे। किन्तु हा! शोक है कि यह कार्य्य उनका अन्तिम कार्य्य था।

१७ सितम्बर को उनका शरीर कुछ अस्वस्थ मालूम पड़ा; दूसरा दिन भी इसी तरह समाप्त हुआ; किन्तु १९ सितम्बर १८३३ को उन्हें ज्वर ने आ दबाया, जिसकी क्रमशः वृद्धि होती गई। अन्त में वह इस भयानक दशा को पहुंच गया कि २७ सितम्बर की रात्रि के २॥ बजे उसने उनकी जान लेकर छोड़ा। राजा राममोहन राय इस असार संसार को छोड़ परलोक सिधारे, तथा अपने इच्छानुसार वह समाधिस्थ किए गए। यद्यपि बिना किसी समारोह के हमारे प्रसिद्ध चरित्रवान् महात्मा राजा राममोहन राय को समाधि में शयन करा दिया गया, परन्तु इस दुःसम्वाद ने युरोप भर में दुःख और शोक फैला दिया। प्रायः सभी अच्छे लोगों और समाचार पत्रों ने इनका शोक मनाया।

राजा साहब की समाधि अच्छी दशा में न थी। बाबू द्वारकानाथ ठाकुर ने विलायत जाने पर उत्तम प्रकार से इसे ठीक करवाया।

साहित्यसमालोचना

[गत अङ्क के आगे]

यतिभङ्ग के विषय में हमारे मित्र जो यों कहते हैं—

"इस आलोचना से हमको यतिभङ्ग का भी नया अर्थ मालूम हुआ, आज तक हमें यह मालूम नहीं था"।

इसपर हमारा यह प्रश्न है कि आप यह भी जानते हैं कि हमने यतिभङ्ग का अर्थ क्यों किया? अर्थ तो दुर्बोध और अति क्लिष्ट शब्दों ही का किया जाता है और यतिभङ्ग शब्द ऐसा कदापि नहीं। इसका कारण यह है कि यतिभङ्ग प्रायः अर्द्ध चरण के अन्तही पर होने से दूषित जान पड़ता है और जितने उदाहरण हमने पण्डित श्रीधर पाठक की कविता से दिए हैं, वे सब ऐसेही हैं। हम वस्तुतः उन्हीं यतिभङ्गों को दूषित मानते हैं जो सुनने में बुरे जान पड़ें। इसी हेतु हमने पाठकों को सुगमता पर ध्यान दे अर्द्ध चरणान्त का नाम लिख दिया। यतिभङ्ग के विषय में भाषा के आचार्यों का यह मत है—

(१) और चरण के चरण जहँ और चरण लों लीन। यथा—हरि हरि केशव मदन मोहन घनश्याम सुजान, केशवदास जी (क. प्रि.)।

(२) जहँ बिराम पद और को और पदहिं सो लीन। सो यतिभङ्ग कवित्त है करैं न सुकवि प्रबीन॥ यथा—ब्रज को कुमारी कावै लीन्हे सुकुमारिका पढ़ावैं कोक करिकान केशव सबै निबाहि-श्रीपति जी (काव्य सरोज)।

(३) ताहि कहत हम वृत्त जहँ छन्दोभङ्ग सुवर्ण । लाल कमल ज्यों सु वृषभानु लली के चर्ण ॥——दास जी (काव्य निर्णय) ।

(४) बरन एक पद को कै पद में लीन। सो हतवृत्त कहत हैं जे परबीन ॥ यथा—जै जै केशव मनमोहन घन श्याम ।—जगत सिंह (साहित्य सुधानिधि) ।

वर्तमान समय के प्रसिद्ध कवि लछिरामजी का भी यही मत है—

(५) अच्छर एकै चरन को युग पद में दरसाय। यथा—केसरि तिलक ललाट बेसरि बानक मुखबेस ॥—(रावणेश्वर कल्पतरु) ।

बस, अधिक उदाहरणों की अवश्यकता नहीं, उपर्युक्त उदाहरणों से विदित है कि यतिभङ्ग प्रायः अर्द्ध चरणान्त ही पर हुआ करता है और वही वस्तुतः दूषित भी है। द्वितीय उदाहरण ही इस मत के विरुद्ध है सो उसे पढ़ने में बुरा कोई नहीं कह सकता है। यदि श्रीपति जी भी अपनी ओर से उदाहरण बना कर देते तो अन्य कवियों की भांति वह भी अर्द्ध चरणान्तही पर यतिभङ्ग करते, पर काव्यपरिचित पाठकों पर अवश्य विदितही होगा कि उन्होंने सब दोषों के उदाहरण केशवदासजी ही की कविता से यथाशक्ति देने का नियम कर लिया था और केशवदास जी भला ऐसा दूषित यतिभङ्ग कब करने लगे ! बस, बिवश हो श्रीपति जी को उन्हीं महाकवि की कविता में से एक ऐसा उदाहरण देना पड़ा जो बिशेष दूषण संयुक्त नहीं कहा जा सकता। कविता से कम परिचित पाठकों को तो बड़ोही कठिनता से जान पड़ेगा कि उसमें यतिभङ्ग है। किस स्थान पर ऐसी दशा में हमने नया लक्षण यतिभंग का क्या किया ?

६—कुछ आगे चल कर आप लिखते हैं—

" समालोचक जी ने बड़ी दयादृष्टि से लड़कपन और प्रवीणकाल की कविता को एकही लाठी से हांकाने को कृपा दिखाई है। हमारे आलोचक सज्जनों ने चाहे आलोचन के मैदान में पहिलेही पहिले क़दम रक्खा हो, परन्तु जिस अङ्गरेज़ी के ज़ोर से उन्हें इस प्रकार की आलोचना लिखनी आई है उसमें उन्होंने और भी बहुत सी आलोचनाएँ पढ़ी होंगी और उनमें यह भी देखा होगा कि किसीकी बालकाल की कविता और प्रवीणकाल की कविता को एकही दृष्टि से नहीं देखा जाता "।

इसे पढ़कर तो हमसे हँसी रोके न रुकी। क्योंकि एक तो हमारे मित्रजी के मतानुसार कविता पशुओं के समान है और समालोचक चरवाहों के; नहीं तो वह उसे लाठी से कैसे हांकते ? कविता और समालोचकों को ऐसा " घोर "* आदर प्रदान करना भारतमित्रही से सहृदय महापुरुषों का काम है। फिर इस बात का भी हमें विश्वास हो गया कि भारतमित्र ने निस्सन्देह यह लेख आँखें बन्द करके लिखा है। इसपर विशेष कुछ न कह कर हम पाठक जी के सब पद्य पूर्वापर क्रम से नीचे लिखे देते हैं—

१८८०—राम हिँडोल । १८८१—मंगलाचरण (पंक्ति १ से ६ तक), बसंतागमन, बसंत राज्य,† रामबिलाप, गोपिकागीत, कृष्णगुन गान, गोपाबिलाप । १८८२—कुछ नहीं । १८८३—मंगलाचरण (पंक्ति ७ से अन्त तक) भारतोत्थान, फाग, बसन्त, लार्ड रिपन का प्रयाग आगमन । १८८४—भ्रमराष्टक, चन्द बधाई, लावनी चेतावनी, समस्यापूर्ति (दो पूर्तियां छोड़, जो सन् ८५ व ८७ की हैं) चित्रकाव्य १। १८८५ — हिमालय, भारतप्रशंसा, भारतश्री, कजली, मेघागमन, बलाबिधवा, जगनिठुराई, सरस बसन्त, मानमोचन, हिन्दबन्दना, कृष्ण जन्मोत्सव, चित्रकाव्य २, घनदिग्विजय।

* जैसे भारतमित्र जी " घोर कुलेखक " लिखते हैं।

† ये दोनों पद्य सन् १८७० ई० में संशोधित हुए हैं।

१८८६—घनाष्टक, इवञ्जुलाइन, एकान्तबासी योगी। १८८७—जगत सचाई सार, हेमन्त, निबल अबला, चिरजीवी रहो विक्टोरिया रानी। १८८८—श्री हरिश्चन्द्राष्टक, चित्रकाव्य (जय श्री सीताराम ग्रैार कांग्रेस बधाई)। १८८९—शरदऋतु वर्णन, ऊजड़ गाम। १८९० —कुछ नहीं। १८९१—चित्रकाव्य (रीवाँधीश को आशीर्वाद)। १८९२—कुछ नहीं। १८९३—प्राउस साहब का वैकुण्ठ बास, प्रेमपियाला। १८९४—८९५—कुछ नहीं। १८९६—विकटोरिया चिरजीवी, १८९७—१८९८—कुछ नहीं। १८९९—घनविनय, शरद् समागत स्वागत, शशिशिला लेख। १९००—गुनवन्त हेमन्त, नव बसन्त ॥

बस, इसपर ध्यान देने से ही मर्मज्ञ पाठकों को विश्वास हो जायगा कि पण्डित श्रीधर पाठक महाशय की बाल ग्रैार प्रवीण काल की कविता में कितना अन्तर है। उनकी कविता स्थूल रूप से दो दशाब्दियों पर विस्तृत कही जा सकती है। सो यदि पहिली को "लडकपन" की ग्रैार दूसरी को "प्रवीण काल की कविता" मान लें, तो बरबस यही कहना पड़ता है कि हमारे कवि जी की "लड़कपनही" की कविता बहुत उत्तम है। क्योंकि "प्रवीण काल" में एक तो उन्होंने रचनाही अति अल्प की है, पर जो कुछ की भी उसमें घनविनय को छोड़ शेष पद्य वैसे सराहनीय कदापि नहीं हैं। तो ऐसी दशा में हम नहीं कह सकते कि भारतमित्र जी का हमपर उपर्युक्त तीक्ष्ण कटाक्ष कहाँ तक उचित सिद्ध हो सकता है? हमने समालोचना लिखते ही समय इस सन संवत की बात पर ध्यान दिया था, पर इसकी विशेष विवेचना हमने यह सोच कर नहीं की थी कि हमारे पाठक जी भी सम्भवतः उन कवियों में से हैं जो एक ही दिन में एक समय अत्यन्त विलक्षण कविता रच सकते हैं ग्रैार दूसरे समय उससे कहीं निकृष्ट। जिन अङ्गरेज़ी आलोचनाओं में हमने यह पढ़ा "कि किसीकी बालकाल की कविता ग्रैार प्रवीणकाल की कविता को एकही दृष्टि से नहीं देखा जाता", उन्हींमें हमने उक्त प्रकार के कवियों का होना भी पढ़ा है जो unequal Poets (असम कवि) कहलाते हैं।

७—भारतमित्र जी पुनः लिखते हैं कि "केवल एकही बात हमको ग्रैार कहनी है कि स्वाभाविक कविता में छन्द नहीं टूटता ग्रैार न उनको कृत्रिम कवियों की भाँति तिनका लेकर छन्द नापना पड़ता है"। सबसे प्रथम हम मित्र जी से यह पूछेंगे कि वह स्वाभाविक कविता का क्या अर्थ समझते हैं;

(क) मनुष्यों के स्वभावों के वर्णन को, या

(ख) साहित्यप्रणाली से अपरिचित कवियों की रचना को, अथवा

(ग) प्राकृतिक वर्णनों को?

इसमें यदि प्रथम अर्थ माना जाय तो पाठक जी स्वाभाविक कवि कदापि नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उन्होंने मनुष्यों के शीलस्वभाव का (अनुवादों को छोड़, जिनके पात्रों के शीलस्वभाव वर्णन से पाठक जी से कोई सम्बन्ध नहीं माना जा सकता) कहीं भी विशेष वर्णन नहीं किया है। द्वितीय अर्थ भारतमित्र जी भलेही मानें, हम तो मान नहीं सकते; क्योंकि हमारा सदाही से यह दृढ़ अनुमान था कि पाठक जी भाषा साहित्य के मर्मज्ञ अवश्य होंगे, ग्रैार अब आगराही के निवासी एक महाशय ने, जो अपना नाम "पर्य्यालोचक" बतलाते हैं, ग्रैार जिन्होंने हमारी समालोचना पर बहुत कुछ लिखा भी है, हमारे उस अनुमान को दृढ़ विश्वास में परिवर्तित कर दिया है। काव्यरचना के निमित्त तीन गुण हम आवश्यक समझते हैं-(१) शक्ति, (२) शिक्षा ग्रैार (३) अनुभव [इस विषय में सरस्वती के दिसम्बर सन १९०० वाले अङ्क में प्रकाशित हमारा "हिन्दीकाव्य (आलोचना" नामक निबन्ध देखिए]। पर यदि स्वाभाविक कविता का तृतीय अर्थ माना जाय तो हम सहर्ष स्वीकार करते हैं कि निस्सन्देह पण्डित श्रीधर पाठक अति उच्च श्रेणी के स्वाभाविक कवि

हैं। तो भी भारतमित्र का यह कथन सर्वथा भ्रममूलक है कि "स्वाभाविक कविता में कभी छन्द नहीं टूटता"। यह तो छन्द का गुणही है कि उसमें चढ़ाव उतार, लघु और दीर्घ अक्षर और मात्राओं का यथास्थान होना इत्यादि ठीक ही ठीक हो। छन्दों का सदोष टूटना दो प्रकार से होता है-एक यतिभङ्ग और दूसरा छन्दोभङ्ग से। यतिभङ्ग का उद्धार श्रीपति जी ने यों लिखा है—

"परम चमत्कृत अर्थ जहँ बिनु यतिभङ्ग न होय।
तहँ न दोष यतिभङ्ग को कहैं सयाने लोय ॥ "

परन्तु यतिभङ्ग अथवा छन्दोभङ्ग का निवारण, यह किसी आंचार्य्य ने नहीं कहा कि जहाँ प्राकृतिक वर्णन हो वहां ये दोष नहीं माने जाते। सुतरां भारतमित्र का यह कहना कि स्वाभाविक कविता में छन्द टूट ही नहीं सकता, किसी भांति माननीय नहीं। यदि स्वाभाविक कवि का अर्थ यह लें कि वह स्वभाव ही से कवि है, कृत्रिम नहीं, तो यही कह सकते हैं कि स्वाभाविक कवियों के मुख से स्वयं शुद्ध छन्द निकलते हैं, पर कृत्रिम कवि (अर्थात् तुक जोड़नेवाले) गुत्थिम गुत्था कर अवश्य तिनके से नाप नाप कर अपने भद्दे वाक्यों को छन्द के स्वरूप में कर देते हैं। सो छन्द दो प्रकार से टूटते हैं—एक टूटना सदोष होता है (जैसे छन्दोभङ्ग और यतिभङ्ग में) और दूसरा निर्दोष [जैसे प्रत्येक छन्द में विश्रामस्थल हुआ करते हैं; यथा "आगे चले बहुरि रघुराई"।—इसमें "चले" शब्द पर विश्राम के कारण छन्द निर्दोष रीति से टूटता है]। यह तो भारतमित्र जी ही कहें कि स्वाभाविक कविता में छन्द की डोरी ऐसी पुष्ट होती है कि वह टूट ही नहीं सकती। बलिहारी ऐसे छन्द की! हमने तो अब तक ऐसे छन्द का नाम न सुना था, कदाचित् भारतमित्र जी ने कोई नवीन बिलक्षण पिङ्गल निर्माण करके उसमें ऐसा छन्द ला ठूँसा हो तो आश्चर्य्य नहीं!! कदाचित् हमारे बतलाए हुए यतिभङ्ग और छन्दोभङ्ग दूषणों से पाठक जी की कविता को मुक्त करने के हेतु यह विचित्र कल्पना आपको सूझी हो!

हमारे अनुमान से भारतमित्र जी ने भाषा काव्य-प्रणाली पर विशेष ध्यान देकर हमारी समालोचना (क्योंकि आपकी समालोचना वास्तव में हमारे लेख को छोड़ स्वयं हमारी ही समालोचना है) नहीं की है; अन्यथा वह खण्डितोपमा दूषण पर कुछ न कुछ अवश्य लिखते, क्योंकि यह सामयिक नाम हमने अपनी ओर से लिख दिया था, यद्यपि इसके समर्थन करने के भी कारण ग्रन्थों में प्रस्तुत हैं।

अन्त में हम भारतमित्र जी को काव्य और कवियों के शुभचिन्तक होने का धन्यवाद देते हैं और यह भी सूचित करदेना उचित समझते हैं कि हमने उनके लेख का उत्तर इस कारण नहीं दिया कि उन्होंने हमारी समालोचना का खण्डन करना चाहा था, वरन् हमने इस हेतु उत्तर दिया कि हम उनके लेख को अनुचित और अयोग्य समझते हैं। इसीके साथ यह भी प्रार्थना है कि वह केवल उत्तरही देने के अर्थ हमारे इस लेख का उत्तर न दें। हाँ, यदि वास्तव में उन्हें कोई सत्य युक्ति और प्रमाण देना हो तो अवश्य दें। कोरी दिल्लगी और कटु वाक्यों के प्रयोग का उत्तर मौनधारण ही ठीक है, सो यदि वह महाशय अबके ही भांति फिर ऐसाही बर्ताव शिष्ट समझेंगे तो हम उत्तर न दे सकने की अभी से क्षमा मांगे लेते हैं।



बरौदानरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] सितम्बर १९०१ ई० [संख्या ९

विविधवार्त्ता

आज इस बात का प्रकाशित करते हमको विशेष आनन्द होता है कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने यह निश्चय कर लिया है कि, जिस प्रकार से बन पड़े, पृथ्वीराज रासो छाप कर प्रकाशित कर दिया जाय। पुस्तक बहुत बड़ी है, अतएव समस्त पुस्तक के छपजाने में समय अधिक लगेगा; परन्तु इससे यह आवश्यक नहीं है कि यह काम ही प्रारम्भ न किया जाय। थोड़ा थोड़ा होने से भी कभी न कभी यह कार्य समाप्त हो ही जायगा। हमको विश्वास है कि कोटा और बूँदी के महाराज इस कार्य में सभा की सहायता करेंगे और गवर्मेंट भी कुछ प्रतिएं लेकर इसका उत्साह बढ़ावेगी।

***

हमारे पाठकों में से सब महाशयों ने तो निस्सन्देह कागज पर लिखी हुई और अनेकों ने भोजपत्र, तालपत्र और भेंड़ी के चमड़े आदि पर लिखी हुई पोथियां देखी होंगी, पर कदाचित् ही किसीने ईंटों पर खुदी हुई पुस्तकों को देखा अथवा उनका वृतान्त सुना होगा। आज जिस पुस्तक के विषय में हम लिखते हैं, उसमें न उस कलम और न उस स्याही से ही काम लिया गया है जिनसे साधारणतः पुस्तकें लिखी जाती हैं। अक्षर भी इसके विचित्र हैं। न मिस्र् के अक्षरों ही से मिलते हैं और न चीन के विचित्र पशुपक्षी की आकृतिवाले अक्षरों ही के समान हैं। योरप में असीरिया और अलजीरिया प्रदेशों के बीच मेसोपोटामिया नामक एक छोटा सा प्रदेश है। इसका अति प्रचीन और प्रसिद्ध नगर बैबिलन नाम का अब तक विभव-विहीन वर्त्तमान है। बाइबिल में यह स्थान अनेक बातों के लिये प्रसिद्ध है। उस पुस्तक के अनुसार इसी नगर में संसार की भाषाओं में भेद उत्पन्न हुआ था। उसमें ऐसा लिखा है कि महाप्रलय के भय से यहां के लोगों ने एक बड़ा भारी गुम्बज बनाना प्रारम्भ किया। इस काम को होते देखकर ईश्वर को भय हुआ कि कहीं ये लोग यह कार्य न कर लें। अतएव

उन्होंने इन लोगों की भाषा में भेद डाल दिया, जिससे यह अवस्था होगई कि बनानेवाले ईंटा मांगने पर गारा और गारा मांगने पर पानी समझने लगे। इसी प्रसिद्ध स्थान पर ईंटों की पुस्तक भी अब तक विद्यमान है। इस बैबिलन नगर के वासी सूर्य्य के उपासक थे और इनके प्राचीन ग्रन्थ का नाम, जिसे इनका वेदही समझना चाहिए, "अन्तक" है।

* * *

इस नगर में "कुरींदा" नाम का एक स्थान है जो एक चौथाई मील लम्बा और उतनाही चौड़ा है। इस भूभाग पर चिकने और मोटे लोहे की चद्दरें बिछी हुई हैं। ऐसी ऐसी ९ बड़ी बड़ी चद्दरें वहां पर बिछी हुई हैं, और वे एक दूसरे से इस प्रकार जोड़ी हुई हैं कि जोड़ दिखाई नहीं देता। इन चद्दरों पर वे ईंटें एक दूसरे के ऊपर जुड़ाई की भांति रक्खी हुई हैं। सब ईंटें मुटाई, लम्बाई और चौड़ाई में एक सी हैं। चारों कोनों पर लोहे के खम्भे गड़े हुए हैं, जिन सब पर धनुष बाण के आकार की मूर्ति खुदी हुई है। इन ईंटों के जोड़ की ऊंचाई कलकत्ते के मानूमेण्ट से ऊंची है। सब मिला कर इनपर १३ पुस्तकें खुदी हैं, जिनमें से "अन्तक" ही सबसे पूर्ण है।

* * *

इन ईंटों के पत्रों पर पृष्ठसंख्या के लिये १, २, ३, ४ आदि के चिन्ह नहीं बने हुए हैं। वरन् पहिले पृष्ठ पर कोई चिन्ह नहीं है, दूसरे पर सूर्य्य, तीसरे पर चन्द्रमा, चौथे पर अरुशा, पांचवें पर गुरुड़, छठवें पर मत्स्य, आदि के आकार बने हुए हैं। बैबिलन वालों का सिद्धान्त है कि इस क्रम से सृष्टि हुई थी। पुरातत्वज्ञों का अनुमान है कि यह पोथी ६०७० वर्ष पुरानी है। पहिले पहल सन १६१८ ई० में स्पेन के एक राजदूत ने इन ईंटों के ढेर को देख कर अनुमान किया था कि इनमें विचित्रता अवश्य कुछ होगी। उसने उसकी एक पंक्ति की नकल करवाई और फिर तो विद्वानों के उद्योग से वे समस्त ईंटें पढ़ी गईं। अब वर्ष में दो बेर उनके दर्शन होते हैं। शेष समस्त काल में वे ढकी पड़ी रहती हैं।

* * *

यह तो बैबिलन की पोथी का वृत्तान्त है। भारतवर्ष में यद्यपि ताम्रपत्र और शिलालेख बहुत पाए जाते हैं, पर पत्थर पर खुदी हुई पोथियां अब तक केवल दो ही मिली हैं; किन्तु वे भी खण्डित हैं। ऐसी जनगाथा है कि हनुमन्नाटक पत्थरों पर खोदा गया था। पर अब तक कोई ऐसा शिलाखण्ड नहीं मिला है जिसपर उस नाटक का अंशमात्र भी लिखा हो। शाकम्भरी-भुपति महाराज विग्रहराज ने एक हर्षकेलि नाटक बनाया था, उसे उन्होंने पत्थर पर संवत् १२१० वि० में खुदवाया था। ये शिलाखण्ड अजमेर के ढाई दिन के झोपड़े के नीचे दबे पड़े थे। अब अङ्गरेज़ विद्वानों की कृपा से ये लखनऊ म्यूज़ियम में वर्तमान हैं। इन्हीं महाराजाधिराज विग्रहराज के चरित्र वर्णन में सोमदेव ललित-विग्रहराज नाटक बनाया था। वह भी शिला पर खुदा था और अब उसका अंश लखनऊ म्यूज़ियम में वर्तमान है। इन शिलाखण्डों को देख हृदय के कुछ भाव ही दूसरे हो जाते हैं। पहिले तो उन कुत्सित् जघन्य कर्मवाले मुसलमानों की ओर दुःख शोक और क्रोध होता है जिन्होंने इन अमूल्य भारतरत्नों को नष्ट कर डालना चाहा था, और साथही हृदय अङ्गरेज़ों की कृतज्ञता स्वीकार करता है, जिनकी कृपा से इन वस्तुओं के हम पुनः दर्शन कर सकते हैं। चतुरानन! तेरी चतुराई पर मोहित हो हम तुझे प्रणाम करते हैं!!!

* * *

हम आज उन सब महाशयों को हृदय से धन्यवाद देते हैं जो लेख द्वारा निरन्तर हमारी सहायता करते रहे हैं और जो हमें विश्वास है करते रहेंगे। इन महानुभावों के कोई कोई लेख यदि